NEHRU
BAL PUSTAKALAYA

पुस्तकें जो अमर हैं

मनोज दास

अनुवाद
बालकराम नागर







नेहरू बाल पुस्तकालय

पुस्तकें जो अमर हैं

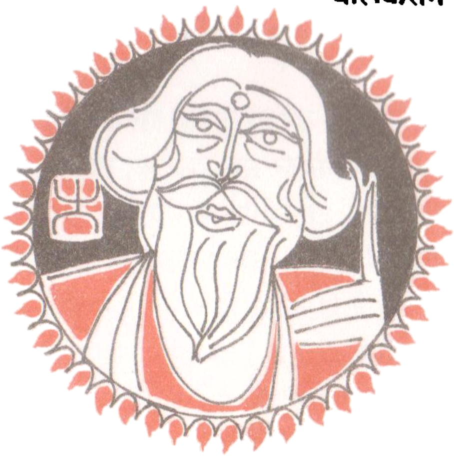
मनोज दास

चित्रांकन

सुकुमार चटर्जी

अनुवाद

बालकराम नागर





एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-0027-X

पहला संस्करण 1973
बाइसवीं आवृत्ति 2002 (शक 1924)

Books Forever *(Hindi)*

रु. 12.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

पुस्तकें जो अमर हैं

कोई दो हजार वर्ष हुए, सी ह्यांग ती नाम का एक चीनी सम्राट था। उसे अपनी प्रजा से एक अजीब नाराजगी थी कि लोग इतना पढ़ते क्यों हैं, और जो लोग किताबें पढ़ नहीं सकते, वे उन्हें सुनते क्यों हैं? उसको विश्वास नहीं था कि अब तक जो पुस्तकें लिखी गयी हैं—वे चाहे इतिहास की हों या दर्शनशास्त्र की या फिर कथा-कहानियों की—उनमें उसका और उसके पूर्वजों का ही गुणगान किया गया है। कौन जाने ऐसे लेखक भी हों जिन्होंने सम्राट को बुरा-भला कहने की हिम्मत की हो!

सी ह्यांग ती का कहना था कि प्रजा को पढ़ने और उन बातों से क्या मतलब? उसे तो चाहिए कि कस कर मेहनत करे, चुपचाप राजा की आज्ञाओं का पालन करती जाय और कर चुकाती रहे। शांति तो बस ऐसे ही बनी रह सकती है।

फिर क्या था! उसने आदेश दिया कि सब पुस्तकें नष्ट कर दी जायें। उन दिनों पुस्तकें ऐसी नहीं थीं जैसी आज होती हैं। तब छापेखाने तो थे नहीं, लकड़ी के टुकड़ों पर अक्षर खुदे रहते थे। ये ही पुस्तकें थीं। उन्हें छिपाकर रखना भी तो आसान नहीं था। सम्राट के आदमियों ने राज्य का चप्पा-चप्पा छान मारा। नगर-नगर और गांव-गांव घूमकर जो पुस्तक हाथ लगी, उसकी होली जला दी। यह बात तब की है जब चीन की बड़ी दीवार का निर्माण हो रहा था। ढेर सारी पुस्तकें, जो कि बड़े-बड़े गोल लट्ठों के रूप में थीं—पत्थरों की जगह दीवार में चिन दी गयीं। अगर किसी विद्वान ने अपनी पुस्तकें देने से इंकार किया तो उसे किताबों सहित बड़ी दीवार में दफना दिया गया। ऐसा था पढ़नेवालों पर राजा का क्रोध!

कई वर्ष बीत गये। सम्राट की मृत्यु हो गयी। उसके मरने के कुछ वर्ष बाद ही, लगभग सभी पुस्तकें जिनके बारे में सोचा जाता था कि नष्ट हो गयी हैं, फिर से नये, चमकदार लकड़ी के कुन्दों के रूप में प्रकट हो गयीं। इन पुस्तकों में महान दार्शनिक कनफ्यूशियस की रचनाएं भी थीं, जिन्हें दुनिया भर के लोग आज भी पढ़ते हैं।

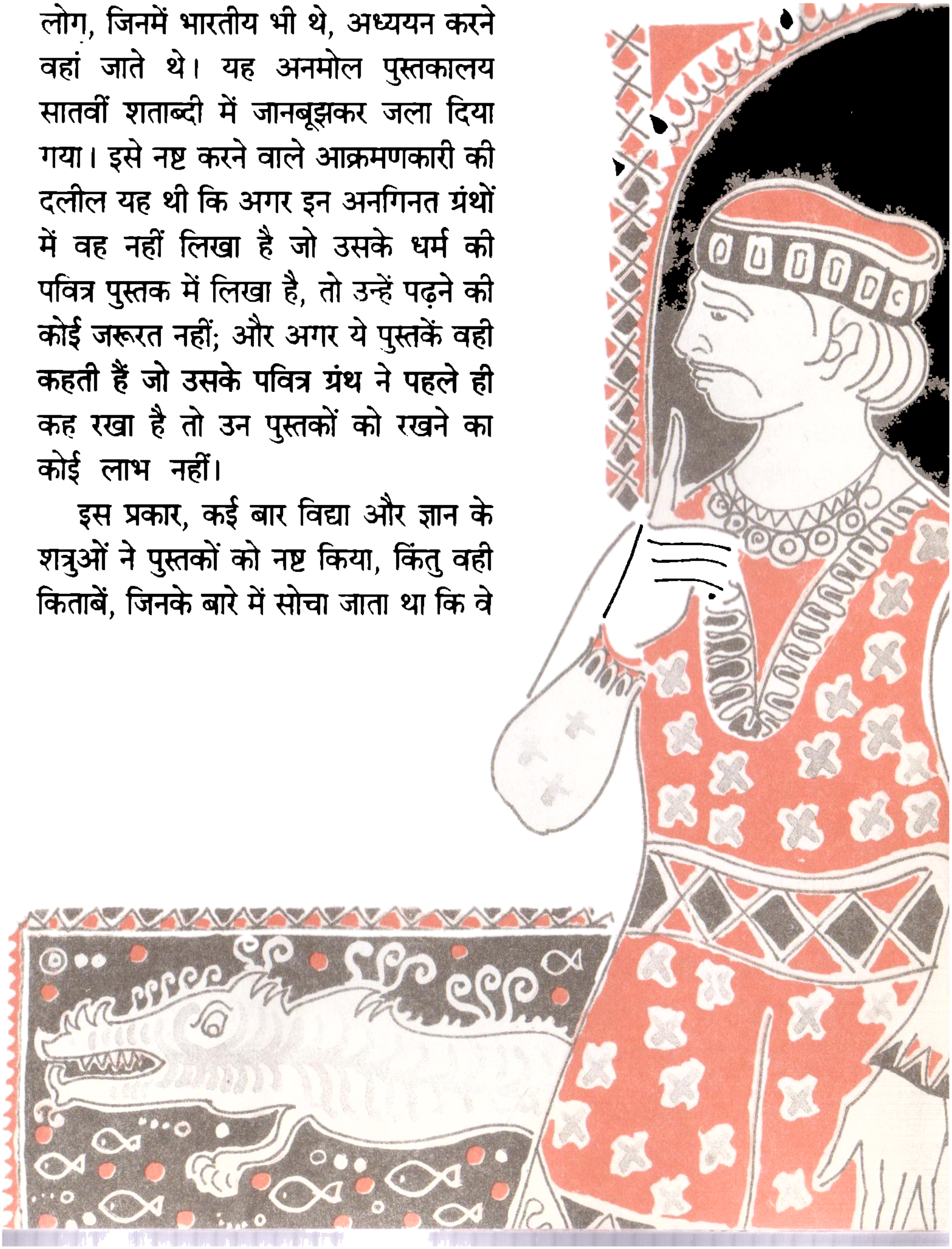
किताबों को इस प्रकार नष्ट करने का यह एकमात्र उदाहरण नहीं है। छठी शताब्दी में नालंदा विश्वविद्यालय उन्नति के शिखर पर था। उन दिनों प्रसिद्ध चीनी यात्री और विद्वान ह्वेन-त्सांग वहां अध्ययन करता था। एक रात सपने में उसने देखा कि विश्वविद्यालय का सुंदर भवन कहीं गायब हो गया है, और वहां शिक्षकों और विद्यार्थियों के स्थान पर भैंसें बंधी हुई हैं। यह सपना लगभग सच ही हो गया, जब आक्रमणकारियों ने विश्वविद्यालय के विशाल पुस्तकालय के तीन विभागों को जलाकर राख कर दिया।

एक समय था जब प्राचीन नगर सिकंदरिया में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था। इसमें अनेक देशों से जमा की हुई पांडुलिपियां थीं। अनेक देशों से सैकड़ों



लोग, जिनमें भारतीय भी थे, अध्ययन करने वहां जाते थे। यह अनमोल पुस्तकालय सातवीं शताब्दी में जानबूझकर जला दिया गया। इसे नष्ट करने वाले आक्रमणकारी की दलील यह थी कि अगर इन अनगिनत ग्रंथों में वह नहीं लिखा है जो उसके धर्म की पवित्र पुस्तक में लिखा है, तो उन्हें पढ़ने की कोई जरूरत नहीं; और अगर ये पुस्तकें वही कहती हैं जो उसके पवित्र ग्रंथ ने पहले ही कह रखा है तो उन पुस्तकों को रखने का कोई लाभ नहीं।

इस प्रकार, कई बार विद्या और ज्ञान के शत्रुओं ने पुस्तकों को नष्ट किया, किंतु वही किताबें, जिनके बारे में सोचा जाता था कि वे



हमेशा के लिए बर्बाद कर दी गयी हैं, फिर से अपने पुराने या नये रूपों में प्रकट होती रहीं। ठीक भी है। पुस्तकें मनुष्य की चतुराई, अनुभव, ज्ञान, भावना, कल्पना और दूरदर्शिता, इन सबसे मिलकर बनती हैं। यही कारण है कि पुस्तकें नष्ट कर देने से मनुष्य में ये गुण समाप्त नहीं हो जाते। दूसरी शताब्दी में डेनिश पादरी बेन जोसफ अकीबा को उसकी पांडित्यपूर्ण पुस्तक के साथ जला दिया गया था। उसके अंतिम शब्द याद रखने योग्य हैं, "कागज ही जलता है, शब्द तो उड़ जाते हैं।"

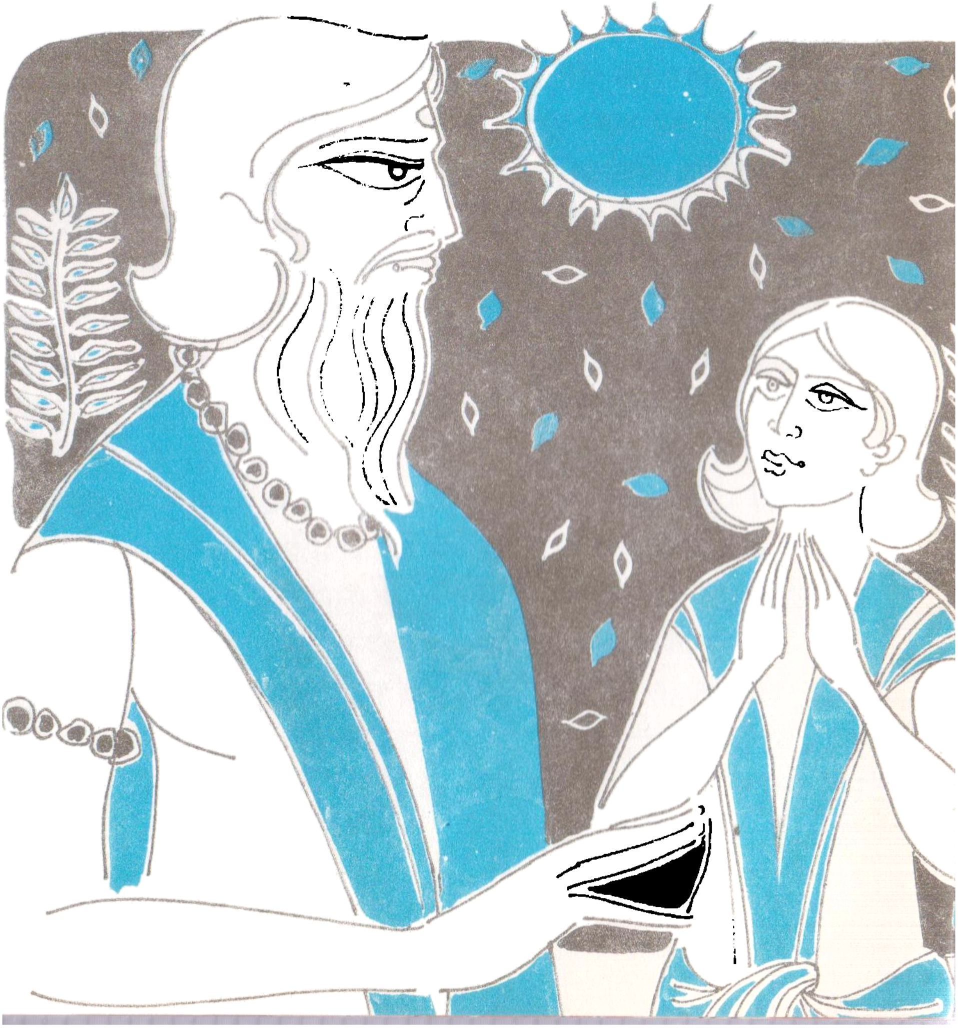
ऐसे भी लोग हैं जिन्हें पुस्तकें प्राणों से भी प्यारी होती हैं। अपनी मनपसंद पुस्तकों के लिए वे बड़े से बड़ा खतरा झेल सकते हैं। भारतीय परंपरा में एक उदाहरण है। कहते हैं कि स्वयं विष्णु को पुस्तकें इतनी प्रिय हैं कि एक बार विनाशकारी प्रलय में जब सारी सृष्टि डूबने लगी तो मछली का रूप धारण करके उन्होंने वेदों को बचा लिया।

ऐसे भी लोग हैं जो अपनी प्रिय पुस्तक के खो जाने पर परेशान नहीं होते क्योंकि समूची पुस्तक उन्हें जबानी याद होती है।

पुराने जमाने में, लिखे हुए को कंठस्थ कर लेने का लोगों का अनोखा ढंग था। यूनानी महाकवि होमर (जिसका काल ईसा से नौ सौ वर्ष पूर्व है) के महाकाव्य इलियड तथा ओडीसी पेशेवर गानेवालों की पीढ़ी दर पीढ़ी को कंठस्थ थे। इन दोनों महाकाव्यों में कुल मिलाकर अट्ठाईस हजार पंक्तियां हैं। कुछ चारण तो इससे चौगुना याद कर सकते थे। स्मरण शक्ति की इस बात से वेदों का ध्यान हो आता है जो न केवल भारत के, बल्कि कुछ लोगों के अनुसार तो संसार के आदि ग्रंथ माने जाते हैं।

अनेक विद्वानों का मत है कि वेद संसार की सबसे पहली पुस्तकों में से हैं। एक लंबे समय तक वेद मंत्र लिखे हुए नहीं थे, बल्कि जबानी ही पिता पुत्र को, और गुरु शिष्य को सिखाते रहे। इसी प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी ने सीखा।

वेदों की रचना पुरानी संस्कृत में हुई। भारत में सदा से कई भाषाएं बोली जाती रही हैं, किंतु पुराने जमाने में संस्कृत का प्रयोग सारे भारत में होता था। भारत के कोने-कोने से कवियों और विद्वानों ने संस्कृत के जरिये ही भारतीय साहित्य का भंडार भरा। प्राचीन भारत का दर्शन तथा विज्ञान दूर-दूर के देशों तक फैला।



हिमालय पर्वत और गहरे-गहरे सागरों को पार करके भारत की कहानियों का भंडार, कथा-सरितसागर, पंचतंत्र और जातक, दूर-दूर देशों तक पहुंचा।

यह भी सब जानते हैं कि बाइबिल के अनेक दृष्टांतों, यूनानवासी ईसप के किस्सों, जर्मनी के ग्रिम बंधुओं और डेनमार्क के हैन्स एंडरसन की कथाओं के मूल भारत में ही हैं।

साहित्य की दृष्टि से भारत का अतीत महान है, इसमें शक नहीं। यह पुस्तक एक खिड़की के समान है जिससे आप उस विशाल और रंग-बिरंगे उपवन की झलक देख सकेंगे। जैसे-जैसे आप बड़े होंगे, इस पुस्तक में चर्चित पुस्तकों के अलावा और भी कई महान पुस्तकों के बारे में जानेंगे, जैसे महान धार्मिक ग्रंथ गीता, योगवाशिष्ठ, त्रिपिटक, धम्मपद, गुरुग्रंथ साहब और ज्ञानेश्वरी।

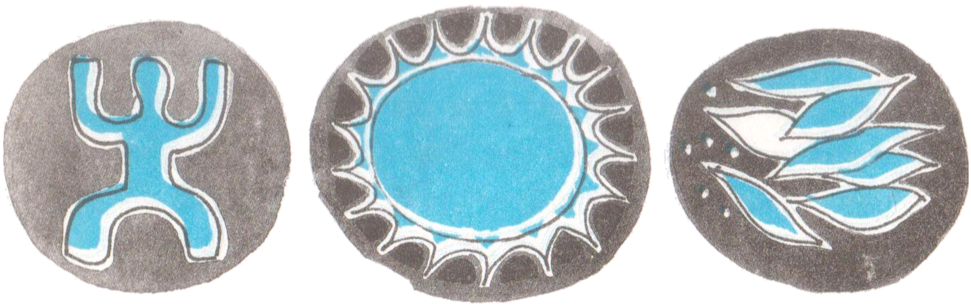
वेद

वेदों में मुख्य रूप से मनुष्य द्वारा कुछ बहुत ऊंची और गंभीर बातें समझने का प्रयास किया गया है, जैसे, ईश्वर क्या है, आनंद क्या है, सत्य क्या है, और इन प्रश्नों से कुछ निष्कर्ष निकाले गये हैं।

दीर्घकाल तक वेद श्रुति के नाम से प्रचलित रहे। आम तौर पर श्रुति का अर्थ है—जो सुना जाये। इसका गूढ़ अर्थ है, उद्घाटित सत्य। ऐसा विश्वास किया जाता है कि वेदों में जो कहा गया है वह सब परम शक्ति ने ऋषियों पर उनकी ध्यानावस्था में उद्घाटित किया। कुछ वैदिक ऋषियों, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, पराशर, कण्व और मधुछन्द आदि का नाम तो पौराणिक कहानियों और प्राचीन कथाओं में इतनी बार आता है कि उनके नाम हमें परिचित से लगते हैं। कई भारतीय परिवार तो अपने को इन ऋषियों का वंशज मानते हैं। इस प्रकार देखा जाए तो हमारा वेदों और उनके रचयिताओं से गहरा संबंध है।

वैदिक ऋषियों का विश्वास था कि मनुष्य में शरीर और मस्तिष्क के अलावा आत्मा भी है। आत्मा को जानना स्वयं को पहचानना है। कोई मनुष्य ऋषि या सिद्ध पुरुष तभी बन पाता है जब वह अपने-आपको भली-भांति समझ लेता है। तब यदि वह चाहता तो ज्ञान प्राप्त करने में दूसरों की भी सहायता कर सकता था। ऋषि अपने शिष्यों को सामने भूमि पर बिठाकर बोल-बोल कर, मंत्र सिखाते थे और शिष्य प्रतिदिन, घंटों इन वेद मंत्रों का अभ्यास किया करते थे।

वेद किसी धर्म या मत विशेष की शिक्षा नहीं देते। उनमें तो ऋषियों के आंतरिक अनुभवों का वृत्तांत है। ऋषियों ने अपने इन अनुभवों का वर्णन वैसे नहीं किया जैसे हम अपनी किसी दूर देश की यात्रा अथवा पर्वतारोहण के किसी अभियान का करते हैं। ऋषियों ने ध्यानावस्था में जो ज्ञान प्राप्त किया वह इतना गहन था कि उसे साधारण शब्दों में नहीं कहा जा सकता था। इसलिए उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग किया। कहने का अभिप्राय यह है कि वेदों में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ साधारण न होकर, गूढ़ हैं। उषा वैसे तो पौ फटने को कहते हैं, किंतु वेदों में इसका अभिप्राय है वह देवी जो मनुष्य के दिमाग के अंधेरे में दैवी प्रकाश लाती है। इसी प्रकार अग्नि शब्द है, जिसका अर्थ है आग। वेदों में इसका तात्पर्य



केवल भस्म करने और शुद्ध करनेवाली अग्नि से नहीं, उस ऊर्जा और उस संकल्प शक्ति से भी है जो मनुष्य को सत्य की ओर ले जाती है।

महर्षि व्यास ने वेदों को चार भागों में बांटा था—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व। इनमें विभिन्न देवताओं की स्तुति और बलि की रस्मों, रीति-रिवाजों आदि का वर्णन है जो उच्चकोटि का चिंतन दर्शाता है।

वेदों की रचना कब हुई? इस संबंध में कई धारणाएं हैं। यह कहना कठिन है कि कौन-सी धारणा सही है। कई विद्वानों का मत है कि वेद ईसा से कोई पच्चीस

सौ वर्ष पूर्व लिखे गये थे। जर्मनी के विद्वान एच. जेकोवी और लोकमान्य तिलक के विचार में वेदों की रचना कोई छह हजार वर्ष पूर्व हुई। तिलक का निष्कर्ष ग्रह-नक्षत्रों की उस समय की स्थिति के अध्ययन पर आधारित है जिसका वर्णन वेदों में मिलता है। एक विदूषी मदाम ब्लावत्स्की का कहना है कि वेदों में जो ग्रह-स्थिति वर्णित है उसकी पुनरावृत्ति हर छह हजार वर्ष के अंतर पर होती है।



तो यह कैसे कहा जाये कि वेद साठ हजार वर्ष पूर्व नहीं लिखे गये होंगे? उसकी व्यक्तिगत राय में वेदों की रचना अत्यंत प्राचीन काल में हुई होगी।

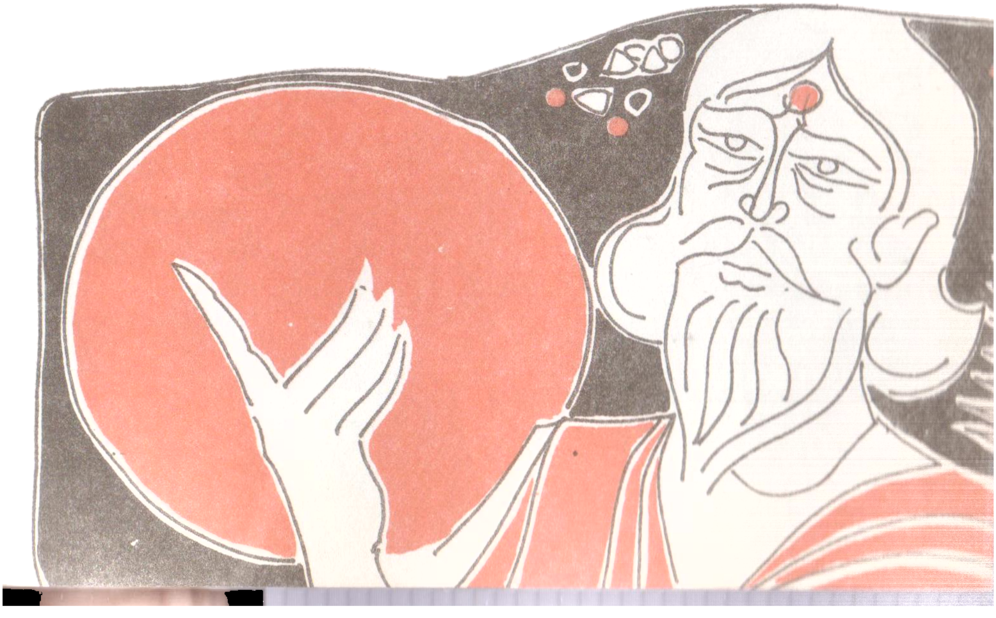
भारतीय परंपरा के अनुसार मनुष्य का जन्म विज्ञान द्वारा निर्धारित काल से कहीं पहले हुआ था। पुराणों का कथन है कि एक ऐसी प्रलयकारी बाढ़ आयी जिसमें सब जड़-चेतन डूब कर नष्ट हो गये। उस समय भगवान विष्णु ने उस जल-राशि में प्रवेश करके वेदों को बचाया। इस कथा से यह भी प्रतीत होता है कि वेद एक ऐसी सभ्यता के बारे में हैं जो किसी समय विद्यमान थी।

लिखे जाने से बहुत पहले तक वेद, मौखिक पाठ द्वारा, एक पीढ़ी से दूसरी



पीढ़ी को उपलब्ध होते रहे। जिस भाषा में इनकी रचना हुई है वह अत्यंत मंजी हुई है। थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ कह सकने की उसमें क्षमता है। इस मंजी हुई स्थिति तक पहुंचने के लिए यह भाषा एक लंबे समय से प्रयुक्त होती आ रही होगी। ऐसी भाषा का विकास एक महान सभ्यता में ही संभव होता है।

हमें आशा है कि एक दिन उस सभ्यता के बारे में हम निश्चित रूप से कुछ अधिक जान सकेंगे जिसमें वेदों की रचना हुई। इतना ही नहीं, हम वैदिक मंत्रों के सच्चे अर्थ भी समझ सकेंगे। वेदों में कहा भी गया है कि मनुष्य तब तक वेदों के अर्थ नहीं समझ सकता जब तक कि उसमें एक सिद्ध-पुरुष की बुद्धि का विकास न हो।



उपनिषद्

बहुत पुरानी बात है। एक प्रसिद्ध ऋषि वाजश्रवस ने एक बार एक अनोखा अनुष्ठान किया। इस अनुष्ठान के करनेवाले को अपनी सारी पूंजी-सम्पत्ति दीन-दुखियों और ब्राह्मण-पुरोहितों को दान कर देनी होती थी।

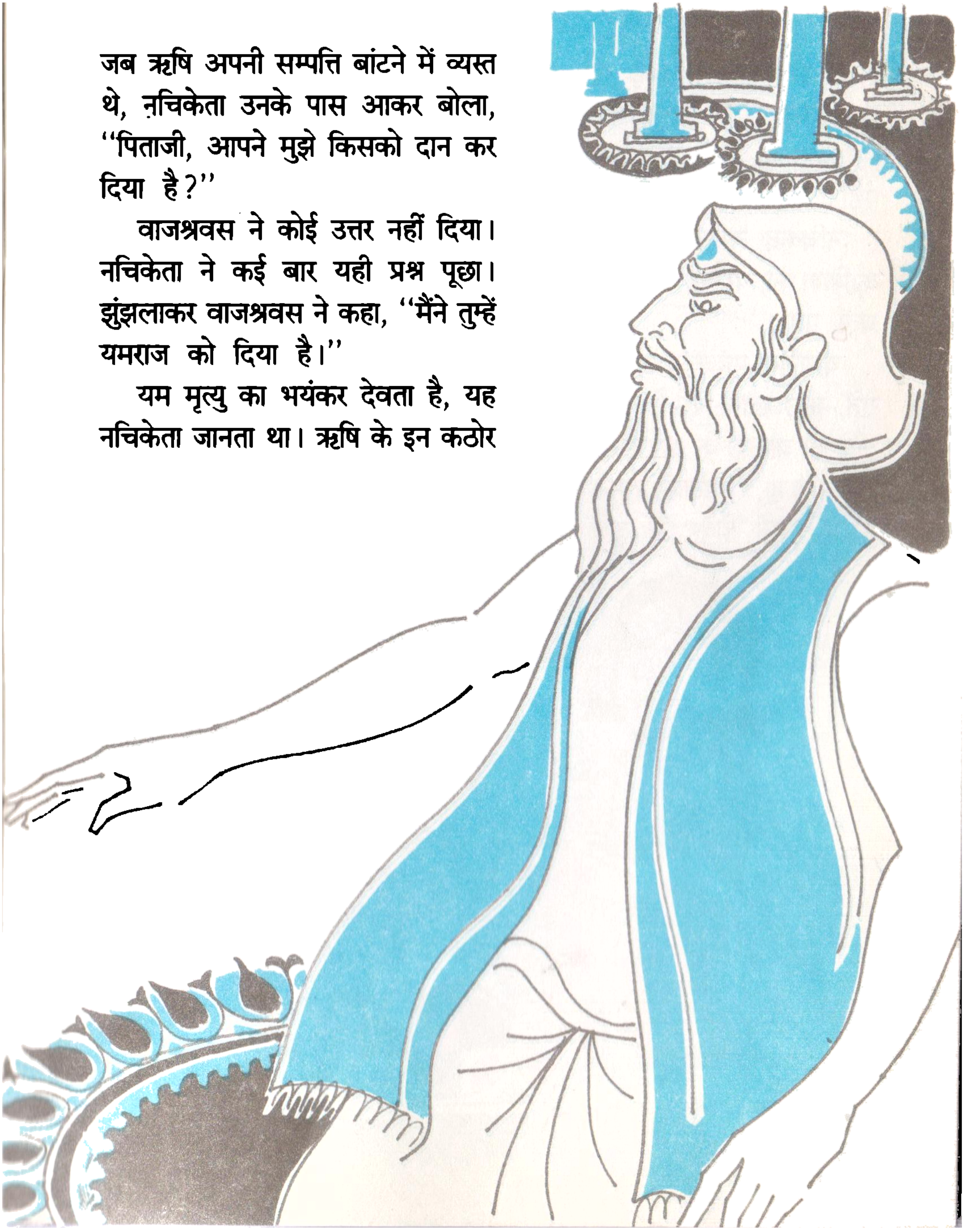
ऋषि के पुत्र का नाम था नचिकेता। वह अभी बालक ही था। नचिकेता ने सोचा कि उसके पिता जब अपना सब कुछ दिये दे रहे हैं तो उसे भी दान में दे दिया होगा।



जब ऋषि अपनी सम्पत्ति बांटने में व्यस्त थे, नचिकेता उनके पास आकर बोला, "पिताजी, आपने मुझे किसको दान कर दिया है?"

वाजश्रवस ने कोई उत्तर नहीं दिया। नचिकेता ने कई बार यही प्रश्न पूछा। झुंझलाकर वाजश्रवस ने कहा, "मैंने तुम्हें यमराज को दिया है।"

यम मृत्यु का भयंकर देवता है, यह नचिकेता जानता था। ऋषि के इन कठोर

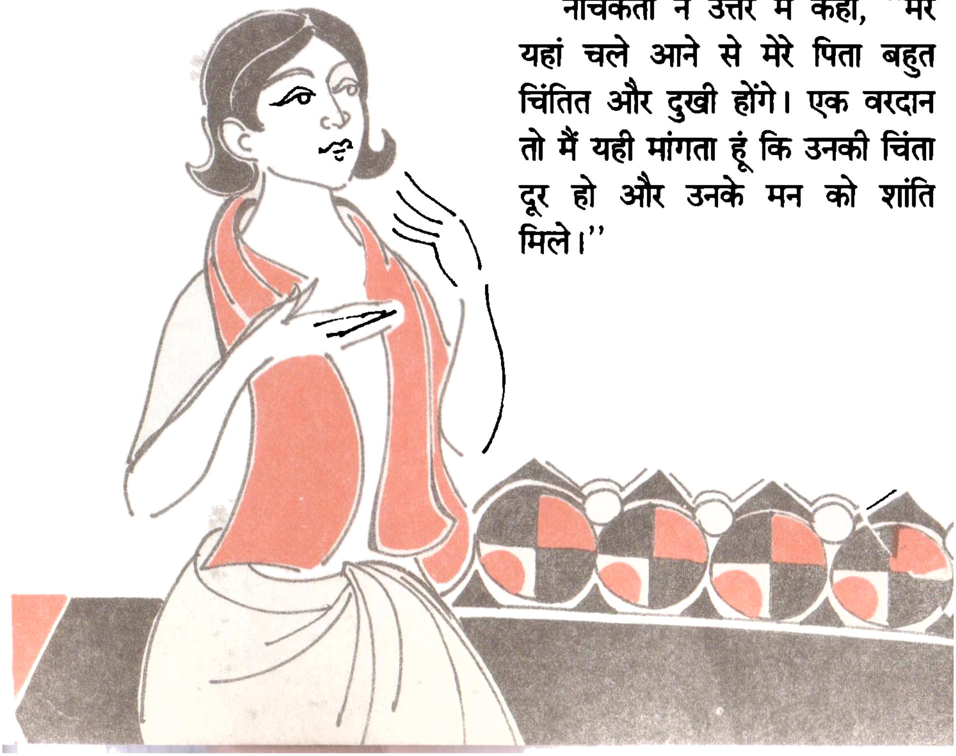


शब्दों से आसपास खड़े सभी लोग स्तब्ध रह गये। कहने के बाद स्वयं वाजश्रवस को भी धक्का-सा लगा। लेकिन नचिकेता अविचल खड़ा रहा। वह सोच रहा था, "मैंने ऐसा क्या किया है जो पिता को मेरी मृत्यु की कामना करनी पड़ी। अवश्य ही यही मेरा भाग्य है कि यमराज से मेरी भेंट हो।"

नचिकेता यमलोक जाने की तैयारी करने लगा। सभी ने उसे समझाने की कोशिश की, पर वह अटल रहा। "मुझे यमराज से मिलना ही है," कहते हुए वह चल पड़ा।

यमलोक पहुंचकर उसे पता चला कि यमराज वहां नहीं हैं। तीन दिन, तीन रातें, कुछ खाये-पिये बिना, वह यमराज की प्रतीक्षा करता रहा। जब यमराज लौटे तो बालक के अपूर्व साहस और दृढ़ निश्चय को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "बालक, तुमने इतने साहस से तीन दिन तक जो कष्ट झेला है, उससे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें तीन वर देता हूं। मांगो, क्या मांगते हो?"

नचिकेता ने उत्तर में कहा, "मेरे यहां चले आने से मेरे पिता बहुत चिंतित और दुखी होंगे। एक वरदान तो मैं यही मांगता हूं कि उनकी चिंता दूर हो और उनके मन को शांति मिले।"

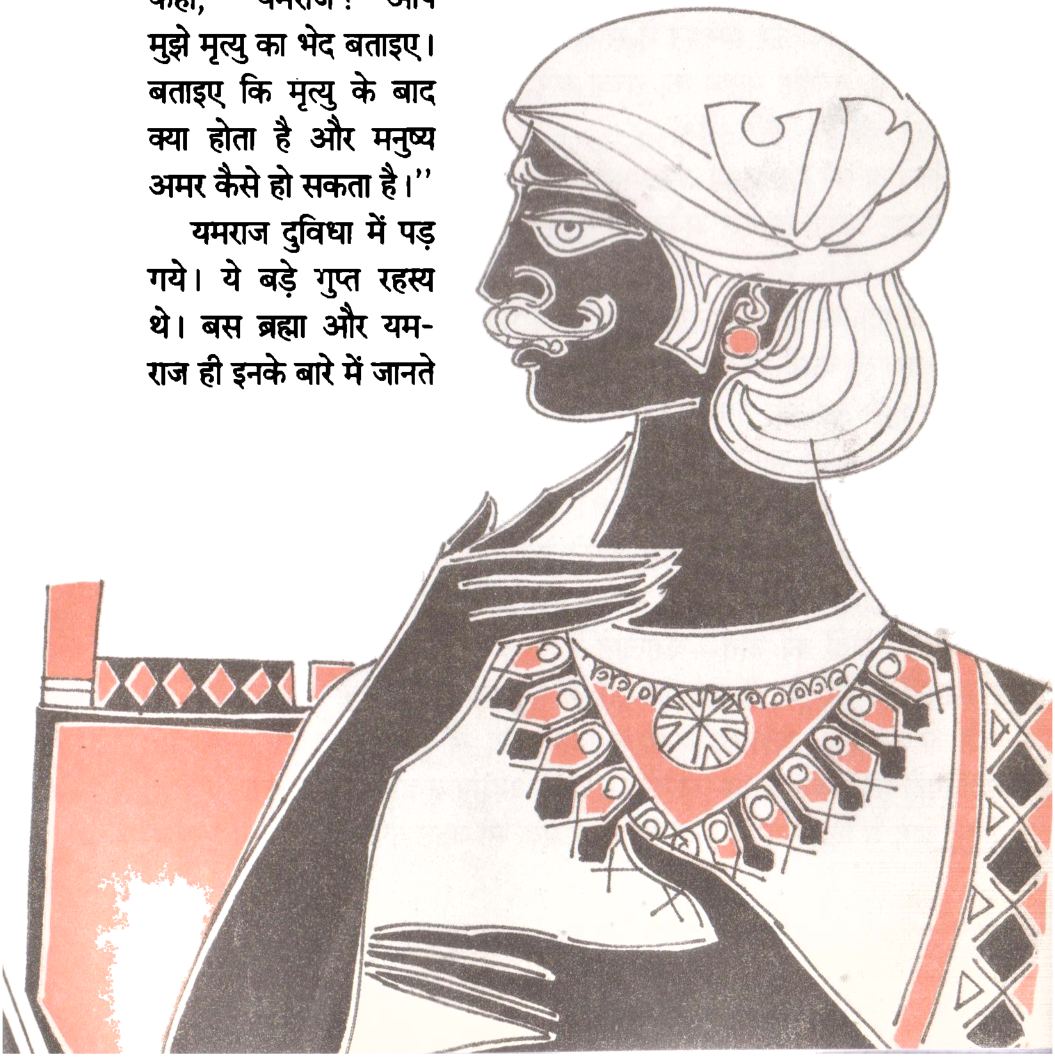


"तथास्तु," यमराज बोले।

अब नचिकेता ने जानना चाहा कि स्वर्ग की प्राप्ति कैसे हो सकती है— स्वर्ग, जहां न बुढ़ापे का भय है, न मृत्यु का। यमराज ने प्रसन्नतापूर्वक उसे यह भी बता दिया।

अंत में नचिकेता ने कहा, "यमराज! आप मुझे मृत्यु का भेद बताइए। बताइए कि मृत्यु के बाद क्या होता है और मनुष्य अमर कैसे हो सकता है।"

यमराज दुविधा में पड़ गये। ये बड़े गुप्त रहस्य थे। बस ब्रह्मा और यम-राज ही इनके बारे में जानते



थे। यमराज ने नचिकेता से कुछ और मांगने का अनुरोध किया—धन, सत्ता अथवा राज्य, कुछ भी। नचिकेता पर इस प्रलोभन का कोई भी असर नहीं पड़ा। उसे तो मृत्यु के रहस्य का पता लगाकर अमरत्व प्राप्त करना था। यमराज हैरान थे कि इतने छोटे से बालक को ऐसी गूढ़ बातें जानने की कितनी जिज्ञासा है। नचिकेता के प्रश्नों का उत्तर उन्हें देना ही पड़ा। उन्होंने मनुष्य के सच्चे रूप, यानी आत्मा को समझने की कठिनाइयां बतायीं। उन्होंने नचिकेता से कहा, "यदि तुम आत्मा को भली प्रकार समझने में सफल हो जाओ तो तुम देखोगे कि मृत्यु एक छल मात्र है, क्योंकि मनुष्य का सच्चा रूप तो आत्मा है, जो कभी नहीं मरती। मरता तो केवल शरीर है।"

नचिकेता की यह कथा उपनिषदों से ली गयी है। उपनिषदों के पन्नों में हम भूले-बिसरे अतीत के ऐसे अनेक नवयुवकों से भेंट करते हैं जो जी-जान से ज्ञान की खोज करते हैं।

उपनिषदों की इन कहानियों से हमें यह पता चलता है कि प्राचीन भारत में शिक्षा-प्रणाली कैसी थी। उन दिनों शिष्य सब बंधनों से मुक्त होकर, वन में गुरु के पास रहता था और अध्ययन में पूरा मन लगाता था। उसकी शिक्षा धर्म-ग्रंथों को पढ़ने तक ही सीमित नहीं थी। चिंतन-मनन, योग और कठिन शारीरिक मेहनत सभी शिक्षा में शामिल थे।

जो अनमोल महान ग्रंथ हमें अपने पूर्वजों से मिले हैं उनमें वेदों के बाद उपनिषदों का ही स्थान है। बहुत से विद्वान् इन्हें वेदों का ही अंग मानते हैं, क्योंकि ये वेदांत—वेदों का अंत—कहलाते हैं। यह कहना अधिक उचित होगा कि उपनिषदों में वेदों के ही कुछ विचारों की व्याख्या की गयी है। विषय-वस्तु की दृष्टि से हर एक उपनिषद् किसी न किसी वेद से संबंध रखता है। ज्यादातर उपनिषदों की रचना वैदिक काल के अंत के आसपास हुई। केवल कुछ उपनिषद् बहुत बाद में लिखे गये। कुल मिलाकर एक सौ आठ उपनिषद् हैं। इनमें सबसे

मुख्य दस उपनिषद् ये हैं, ईश, केन, कठ, मुंडक, मांडूक्य, प्रश्न, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और वृहदारण्यक।

वेद और उपनिषद् मुख्य रूप से यही संदेश देते हैं कि अपने को जानो। आप सोचेंगे कि अपने को कौन नहीं जानता। लेकिन असल में यह बड़ा कठिन काम है। उपनिषदों में कहा भी गया है:

ऐसे बहुत से लोग हैं जो आत्मा की आवाज नही सुन पाते। बहुत से सुनते तो हैं पर समझते नहीं। जो इसकी बात समझता है वह विलक्षण व्यक्ति है। जो इसके बारे में जानता-सीखता है वह चतुर है। वह धन्य है जो अच्छे गुरु से शिक्षा प्राप्त करके इसे समझने लगता है।

आत्मा के बारे में यह बात उपनिषदों को रचनेवालों से ज्यादा अच्छी तरह कौन समझ सकता है! इनमें बड़े ही रोचक ढंग से इस रहस्य को समझाने का प्रयत्न किया गया है। एक उदाहरण देखिए।

एक बार सिद्ध पुरुष याज्ञवल्क्य राजा जनक के साथ दर्शन-शास्त्र पर विचार-विमर्श कर रहे थे। एक गृहस्थ होते हुए भी राजा जनक बड़े विद्वान् और बुद्धिमान थे। राजा से प्रसन्न होकर याज्ञवल्क्य ने वरदान मांगने को कहा।

राजा ने धर्म-ग्रंथों के पठन-पाठन में जीवन बिताया था, पर उनकी ज्ञान की प्यास बुझी नहीं थी। अपना ज्ञान और बढ़ाने के लिए उन्होंने याज्ञवल्क्य से कुछ प्रश्न पूछे।

राजा ने पूछा, "महात्मन्! मनुष्य को प्रकाश कहां से मिलता है?"

याज्ञवल्क्य ने कहा, "सूर्य से, क्योंकि सूर्य के प्रकाश में मनुष्य देखता है, काम करता है और घर लौटता है।"

यह उत्तर सुनकर वैदेह जनक ने कहा, "यह तो ठीक है, मुनिवर। लेकिन जब सूर्य अस्त हो जाता है तब मनुष्य का प्रकाश क्या होता है?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर देते हुए कहा, "तब मनुष्य का प्रकाश चंद्रमा होता है,

क्योंकि उसके प्रकाश में मनुष्य देखता है, काम करता है और घर लौटता है।"

जनक यह सुनकर बोले, "यह तो ठीक है। किंतु जब सूर्य अस्त हो जाता है और चंद्रमा भी छिप जाता है, तब मनुष्य का प्रकाश क्या होता है?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "अग्नि! क्योंकि तब अग्नि के प्रकाश में मनुष्य देखता है, काम करता है और घर लौटता है।"

वैदेह जनक ने कहा, "यह तो ठीक है महात्मन्। किंतु जब सूर्य अस्त हो जाता है, चंद्रमा छिप जाता है और अग्नि बुझ जाती है, तब मनुष्य का प्रकाश क्या होता है?"

याज्ञवल्क्य बोले, "वाणी। क्योंकि तब वाणी के द्वारा मनुष्य देखता है, कार्य करता है और घर लौटता है।" बात को और साफ करते हुए उन्होंने आगे कहा, "राजन! जब अंधेरे में हाथ को हाथ नहीं सुझायी देता, और कोई आवाज सुनायी पड़ जाती है, तो आदमी उसी की ओर बढ़ता है।"



जनक ने यह सुनकर कहा, ''यह तो ठीक है महात्मन्। किंतु जब सूर्य अस्त हो जाता है, चंद्रमा छिप जाता है, अग्नि भी बुझ जाती है, और वाणी को दबा दिया जाता है, तब मनुष्य का प्रकाश क्या होता है?''

याज्ञवल्क्य ने कहा, ''तब मनुष्य का प्रकाश उसकी आत्मा है।''



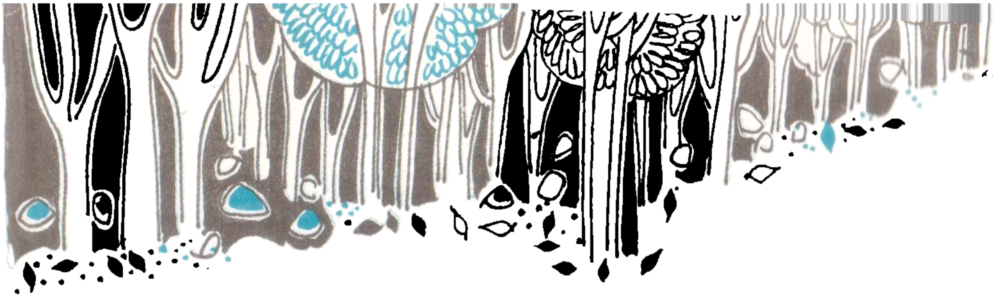
रामायण

पर्वतों और जलधाराओं से सुशोभित विशाल वन दंडकारण्य, जिसका बखान अनेक प्राचीन ग्रंथों में मिलता है, अब भी है। यह ठीक है कि प्राचीन काल में यह बहुत बड़ा था और गोदावरी तथा नर्मदा के बीच के क्षेत्र में फैला हुआ था।

आज भी कलकल करती, थिरकती-नाचती, घने जंगलों में सफेद-भूरी कंकड़ियों में से अपना मार्ग बनाती हुई तमसा देखी जा सकती है।

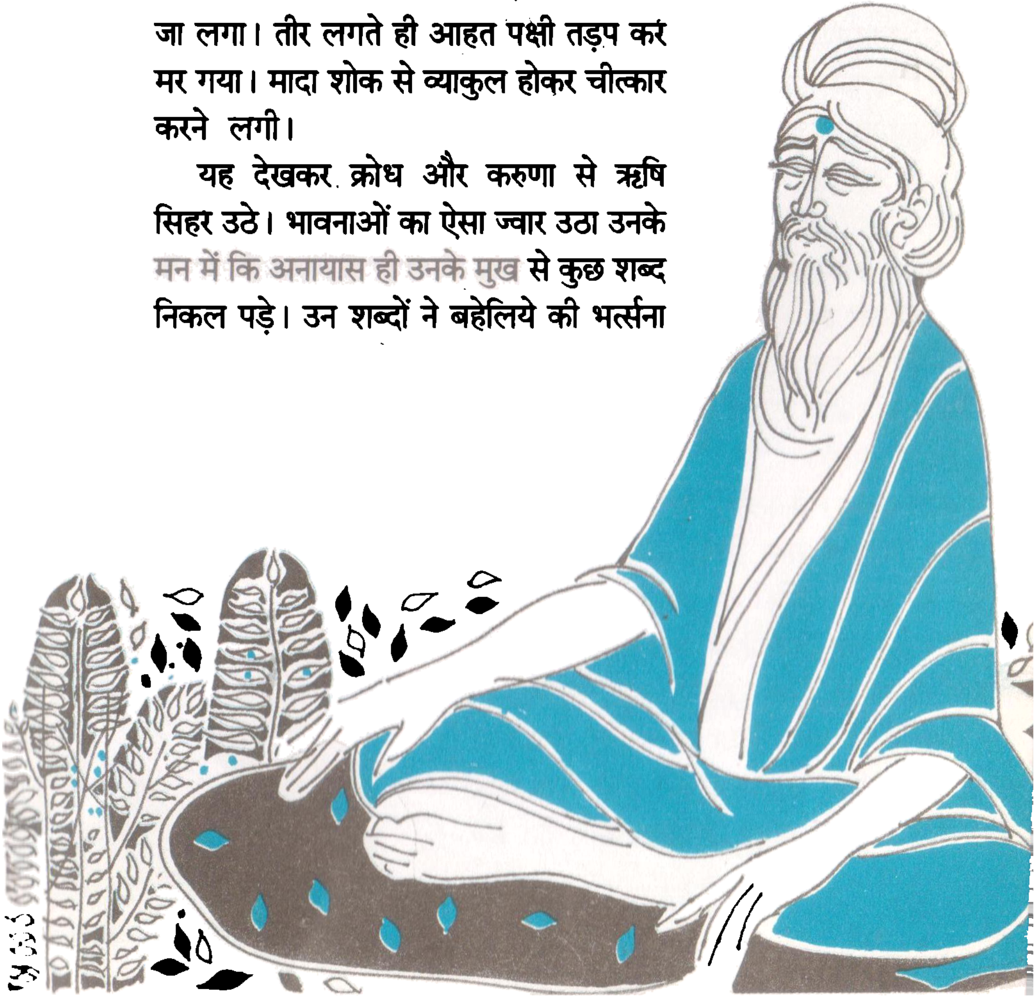
कोई तीन हजार वर्ष पूर्व इसी नदी के किनारे एक महर्षि रहते थे। वर्षों तक घोर तपस्या में लीन वे ऐसे स्थिर बैठे रहे कि उनके समूचे शरीर पर दीमकों ने अपना घर बना लिया। संस्कृत में दीमकों के घर को वल्मीक कहते हैं। यह महर्षि क्योंकि वल्मीक में से बाहर निकले, इसलिए वाल्मीकि कहलाये।

एक दिन प्रातःकाल तमसा में स्नान कर के महर्षि अपनी कुटिया को लौट रहे थे कि उनका ध्यान प्रेमपूर्वक कल्लोल करते, एक दूसरे का पीछा करते हुए, सुंदर क्रौंच पक्षियों के एक जोड़े की ओर गया। वह मुग्ध खड़े उनकी क्रीड़ा



देखते रहे। सहसा न जाने कहां से हवा में एक तीर सनसनाता आया और नर पक्षी की छाती में जा लगा। तीर लगते ही आहत पक्षी तड़प कर मर गया। मादा शोक से व्याकुल होकर चीत्कार करने लगी।

यह देखकर क्रोध और करुणा से ऋषि सिहर उठे। भावनाओं का ऐसा ज्वार उठा उनके मन में कि अनायास ही उनके मुख से कुछ शब्द निकल पड़े। उन शब्दों ने बहेलिये की भर्त्सना



की और मनुष्य को बताया कि उसका आचरण कैसा होना चाहिए।

जब महर्षि का क्रोध शांत हुआ तो उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि जो शब्द उनके मुख से निकल पड़े थे वे साधारण बोलचाल की शैली में नहीं थे। वे एक छंद में बंधे थे। उनमें एक अजीब सौंदर्य और शक्ति थी।

आज भारत का बच्चा-बच्चा किसी न किसी रूप में रामायण की कथा जानता है। किसी न किसी रूप में इसलिए कहा गया है क्योंकि चिरकाल से, समय समय पर, रामायण की मुख्य कथा से प्रेरित होकर, अनेक लेखकों ने महाकाव्य, कविताएं, नाटक और कहानियां लिखी हैं। उत्तर भारत के गोस्वामी तुलसीदास और दक्षिण के कम्बन ने अपने-अपने ढंग से रामायण को हिंदी और तमिल में लिखा। ये दोनों ही अपने-अपने भाषा-भाषी प्रदेशों में अत्यंत लोकप्रिय हैं।

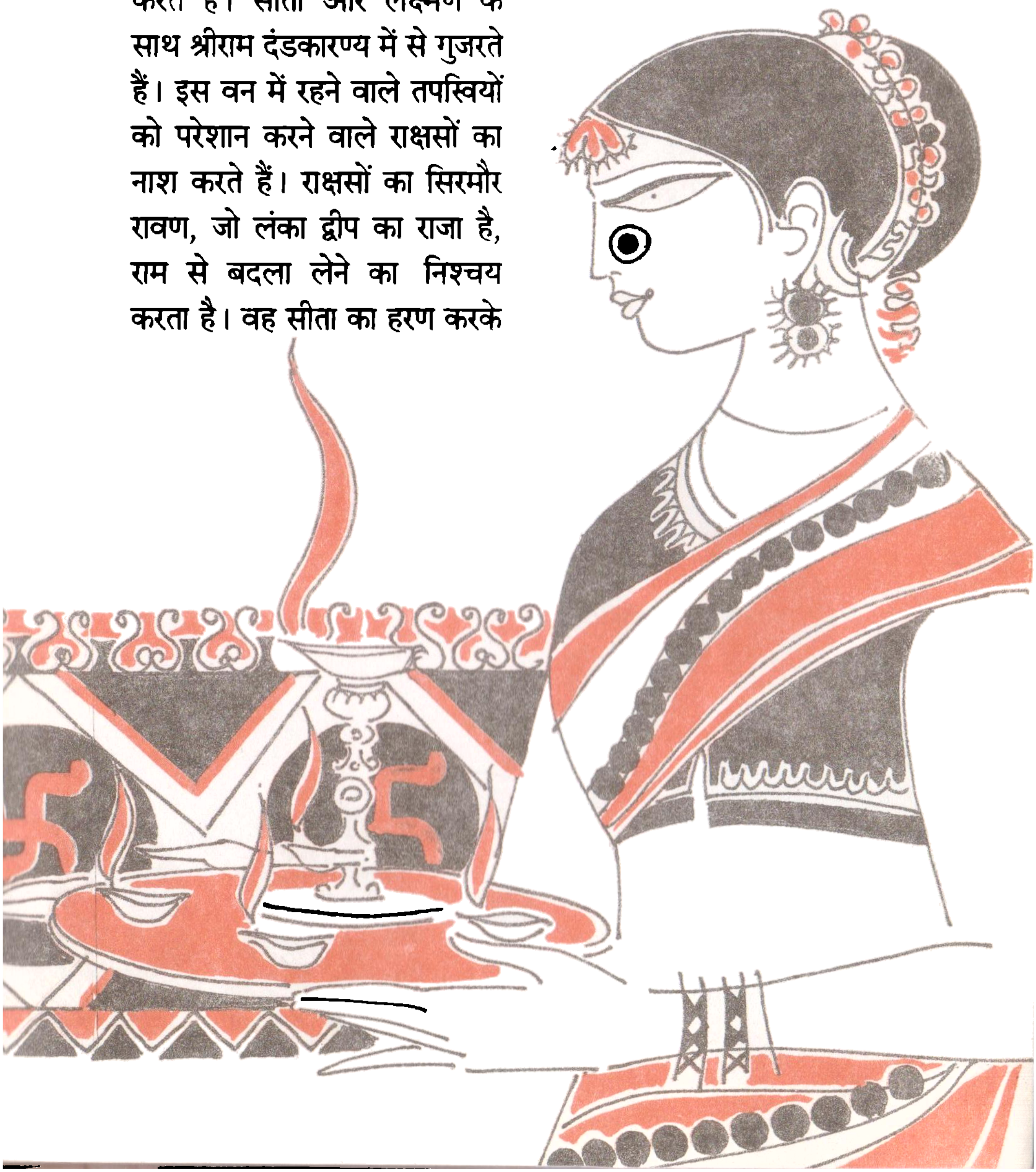
लेकिन इनमें वर्णित रामायण की मूलकथा लगभग एक ही है। अयोध्या के राजा दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र राम का राजतिलक करना चाहते हैं। राज्याभिषेक के एक दिन पहले शाम को दशरथ की सबसे छोटी रानी कैकेयी, राजा को याद दिलाती है कि एक बार महाराज ने उसे दो वरदान देने का वचन दिया था। दशरथ उसे विश्वास दिलाते हैं कि वह अपने वचन का पालन करेंगे।

फिर क्या था। कैकेयी ने तुरंत अपने पुत्र भरत के लिए सिंहासन मांग लिया और राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास। दशरथ यह सुन कर सन्न रह जाते हैं। वह कैकेयी से कुछ और मांगने की विनती करते हैं किंतु कैकेयी नहीं मानती।

पिता ने जो वचन दिया था उसका पालन हो सके, इसके लिए श्रीराम अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण सहित अयोध्या छोड़ देते हैं।



कुछ समय बाद शोकाकुल दशरथ की मृत्यु हो जाती है। बहुत संकोच से, उदास भरत, सिंहासन पर श्रीराम की पादुका को स्थापित कर राज्य का संचालन करते हैं। सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीराम दंडकारण्य में से गुजरते हैं। इस वन में रहने वाले तपस्वियों को परेशान करने वाले राक्षसों का नाश करते हैं। राक्षसों का सिरमौर रावण, जो लंका द्वीप का राजा है, राम से बदला लेने का निश्चय करता है। वह सीता का हरण करके



उसे लंका में ले जाता है। बहुत खोज के बाद वानर सेना की सहायता से, श्रीराम लंका पर चढ़ाई करते हैं और युद्ध में रावण का संहार करके सीता को छुड़ाते हैं।

चौदह वर्ष बीतने पर राम और सीता अयोध्या लौटते हैं। श्रीराम सिंहासन संभालते हैं और एक आदर्श शासक बनते हैं। तब, एक दिन एक नागरिक की यह बात उनके कान में पड़ती है, "क्या इतने दिन रावण के दुर्ग में रही सीता को रानी के रूप में स्वीकार करना ठीक है?"

श्रीराम के आदेश से लक्ष्मण सीता को वन में ले जाते हैं और वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ आते हैं।



वाल्मीकि सीता का स्वागत करते हैं और अपने आश्रम में उसे आश्रय देते हैं। कुछ समय पश्चात सीता के जुड़वां पुत्र होते हैं, लव और कुश।

वाल्मीकि की स्नेहपूर्ण देखरेख में दोनों बालक बेहद कुशाग्रबुद्धि और हर प्रकार से निपुण होते जाते हैं। रामायण की रचना हो चुकने पर, एक दिन वाल्मीकि लव और कुश को इस महाकाव्य के पाठ के लिए श्रीराम के महलों में ले जाते हैं। श्रीराम अपने पुत्रों को पहचान कर गद्‌गद्‌ हो उठते हैं और सीता को लौटा लाने की व्यवस्था करते हैं।

जब सीता अयोध्या लौटती हैं तो राम उनसे कहते हैं कि अग्नि-परीक्षा द्वारा



वह अपनी पवित्रता साबित करें। सीता को अब जीवित रहने की कोई अभिलाषा नहीं रहती। वह धरती माता से प्रार्थना करती हैं, "मां! यदि मैं पवित्र हूं तो मुझे अपनी गोद में लो।"

मां धरती तुरंत अपना हृदय चीरती है और सीता उसमें समा जाती हैं! इससे जहां उनकी पवित्रता सिद्ध होती है, वहां यह भी अर्थ निकलता है कि उनकी पवित्रता पर संदेह करने वाले उनके योग्य नहीं थे।

रामायण का गहन अर्थ भी है। चुपचाप सब कष्ट झेलनेवाली सुंदर और सुशील सीता को युग-युग से देवी मां की तरह पूजा जाता है। वह सत्य का प्रतीक है, जिसको झूठ रूपी दानव रावण के पंजों से छुड़ाया गया। श्रीराम सत्य की रक्षा के लिए किये जाने वाले संघर्ष के प्रतीक हैं।

विश्व साहित्य के महाकाव्यों के नायकों में श्रीराम अद्वितीय हैं। वे आज्ञा-पालन और कर्तव्य-परायणता का एक उदाहरण हैं। बिना किसी संकोच के, पिता की आज्ञा मानते हुए, उन्होंने राज्य पर अपना अधिकार त्याग दिया। वे कर्तव्यनिष्ठ पति भी थे जिन्होंने अपनी पत्नी सीता को छुड़ा लाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इतना ही नहीं, यह जानते हुए भी कि सीता अग्नि की तरह पवित्र हैं उन्होंने लोक-मर्यादा का पालन करने के लिए, सीता का त्याग करके प्रजा की भावना का आदर किया।

लेकिन भारतवासियों के लिए श्रीराम का महत्व और भी है। वे विष्णु का अवतार माने जाते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि रावण से युद्ध करने के लिए उन्होंने वानर सेना का संचालन करना ठीक समझा और भरत से सहायता नहीं मांगी। श्रीराम चाहते थे, अटूट भक्ति और आज्ञा-पालन। इन गुणों के बल पर वानरों ने दशानन रावण की अत्यंत कुशल सेना को परास्त कर दिया। रावण को दशानन अथवा दस सिरोंवाला इसलिए कहते हैं क्योंकि उसे दस विद्याओं पर पूर्ण

अधिकार था। रावण पर श्रीराम की विजय यही सिखाती है कि सत्य सभी शक्तियों से बड़ा है।

आज भी भारत के लोग रामलीला देखकर मुग्ध हो जाते हैं। राम को वन जाते देख आज भी उनकी आंखें भर आती हैं। रावण के मरने पर आज भी उन्हें उतना ही आह्लाद होता है। कभी-कभी किसी घुमक्कड़ गायक को देहाती लोगों की उत्सुक भीड़ घेरे खड़ी रहती है और वह सीता-हरण के बाद राम की व्यथा और हनुमान की वीरता के गीत गा-गाकर उनका मन लुभाता रहता है।

श्रीराम एक आदर्श राजा थे और उनके शासनकाल में प्रजा बहुत सुखी थी। आज भी किसी ऐसे युग का बखान जो हर तरह से अच्छा हो, राम-राज्य कह कर किया जाता है। ग्राम-सभाओं अथवा ग्राम-पंचायतों में, जहां आपसी झगड़े निबटाये जाते हैं, सत्य वचन के लिए राम नाम की शपथ ली जाती है क्योंकि राम सत्य की मूर्ति हैं।

भारत के कुछ बहुत महत्वपूर्ण त्यौहार श्रीराम के जीवन से संबंधित हैं। दीपों का त्यौहार दीपावली, विजयी राम के अयोध्या लौटने की खुशी में मनायी जाती है, और दशहरा उस दिन की याद में मनाया जाता है जब श्रीराम ने घोर तपस्या द्वारा माता दुर्गा को प्रसन्न कर रावण पर विजय पाने का वरदान पाया।

रामायण के भारत में अनेकों रूपांतर तो हुए ही, विदेशों में भी रामायण की कथा बदले हुए रूप में प्रचलित है। इसके बाद एक तिब्बती रूपांतर पाया गया। कम्बोदिया में एक मंदिर के शिलालेख से पता चलता है कि चौदह सौ वर्ष पूर्व वहां रामायण का पाठ होता था। थाई देश पर तो रामायण का इतना गहरा प्रभाव था कि वहां की राजधानी अयूध्या का नाम अयोध्या पर रखा गया। इंडोनेशिया में रामायण की लोकप्रियता का तो कहना ही क्या! वहां के संसार-प्रसिद्ध छाया नृत्यों में रामायण की कथा दर्शायी जाती है।

बहुत-बहुत वर्षों की बात है जब भारत के व्यापारिक और सांस्कृतिक दूत

रामायण को दक्षिण एशियाई देशों में ले गये थे। उन देशों के कवियों और लेखकों ने रामायण की मूल कथा में अपनी कल्पना से उन देशों का रंग भर दिया। इस प्रकार इस महाकाव्य के अनेक रंगारंग रूप सामने आये।

विश्व साहित्य के इतिहास में रामायण का स्थान अद्वितीय है। किसी और पुस्तक के इतने अधिक रूपांतर नहीं हुए। न किसी और कहानी ने अपनी जन्मभूमि से बाहर इतनी लोकप्रियता प्राप्त की।

कुछ वर्षों की बात है कि एक शाम एक गांव में एक लड़का दौड़ा-दौड़ा अपनी मां के पास आया और बोला, "मां! मां! मैंने एक लम्बा-चौड़ा, हट्टा-कट्टा, बड़ी-बड़ी डरावनी मूछोंवाला आदमी देखा है।" और फिर थोड़ा रुक कर उसने कहा, "लगता है वह भीम है।"

बच्चे जानते ही होंगे कि भीम महाभारत के प्रमुख नायकों में से एक है। रामायण और महाभारत लिखे जाने के बाद से कई शताब्दियां बीत चुकी हैं लेकिन भारतीय बच्चों के लिए इनके पात्र अब भी सजीव हैं। शंख, चक्र, गदा और पद्म से सुशोभित विष्णु, गांडीव धनुष-धारी अर्जुन, विराटकाय भीम, सर्वशक्तिमान किंतु करुणामय श्रीराम और पर्वत को उखाड़ कर ले उड़ने वाले हनुमान—ये सब भारतीय बच्चों के लिए उतने ही सच हैं जितने उनके रोज के जीवन में आने वाले लोग, उनके पड़ोसी, मित्र और बंधु-बांधव।

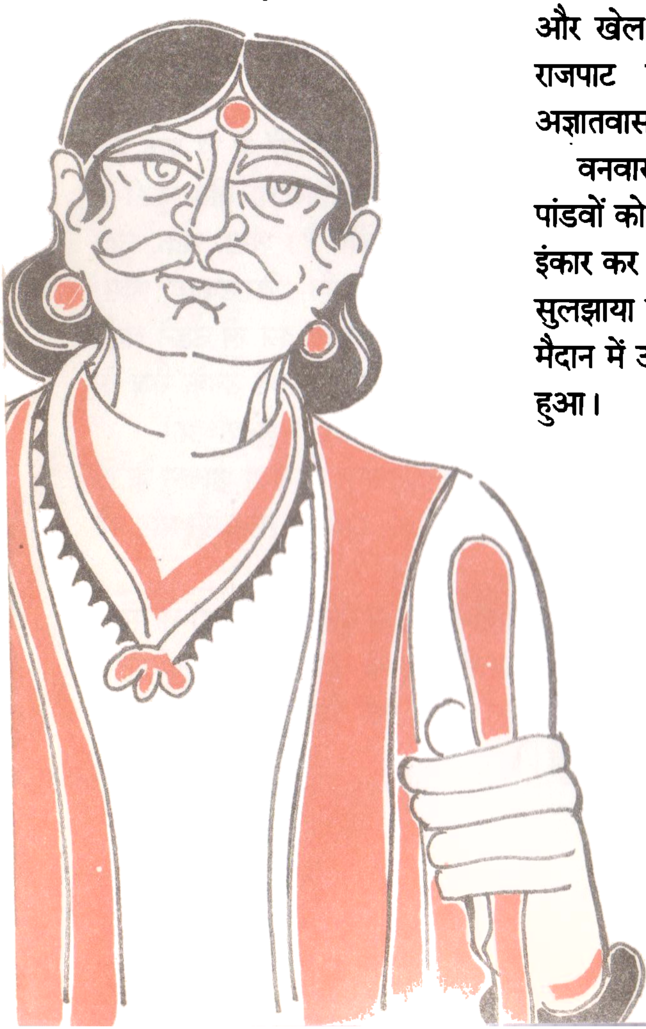
संक्षेप में महाभारत की कथा इस प्रकार है। हस्तिनापुर के राजा शान्तनु के दो पौत्र थे, धृतराष्ट्र और पांडु। बड़े भाई धृतराष्ट्र अंधे थे, इसलिए सिंहासन पांडु को मिला।

किसी शाप के कारण पांडु को अपनी दोनों रानियों कुंती और माद्री के साथ कई वर्ष तक वन में रहना पड़ा। इसी वन में पांडु के पांच पुत्र हुए, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव। इन पांचों की शिक्षा-दीक्षा बुद्धिमान ऋषि-महर्षियों द्वारा वन में ही हुई।

पांडु की मृत्यु के बाद दुर्भाग्य से, धृतराष्ट्र के सौ पुत्र कौरव, पांडवों से ईर्ष्या करने लगे। कई बार उन्होंने पांडवों से छल-कपट का व्यवहार किया किंतु बड़े भाई दुर्योधन को हस्तिनापुर से लगा हुआ आधा राज्य मिल गया और पांडवों के बड़े भाई युधिष्ठिर को इन्द्रप्रस्थ से लगा हुआ शेष आधा भाग।

कुछ वर्ष तो शांति से बीते। फिर एक दिन कौरवों ने पांडवों को पासे के खेल में चुनौती दी। पांडव हार गये और खेल की शर्त के अनुसार, उन्हें राजपाट छोड़ तेरह वर्ष वन में अज्ञातवास करना पड़ा।

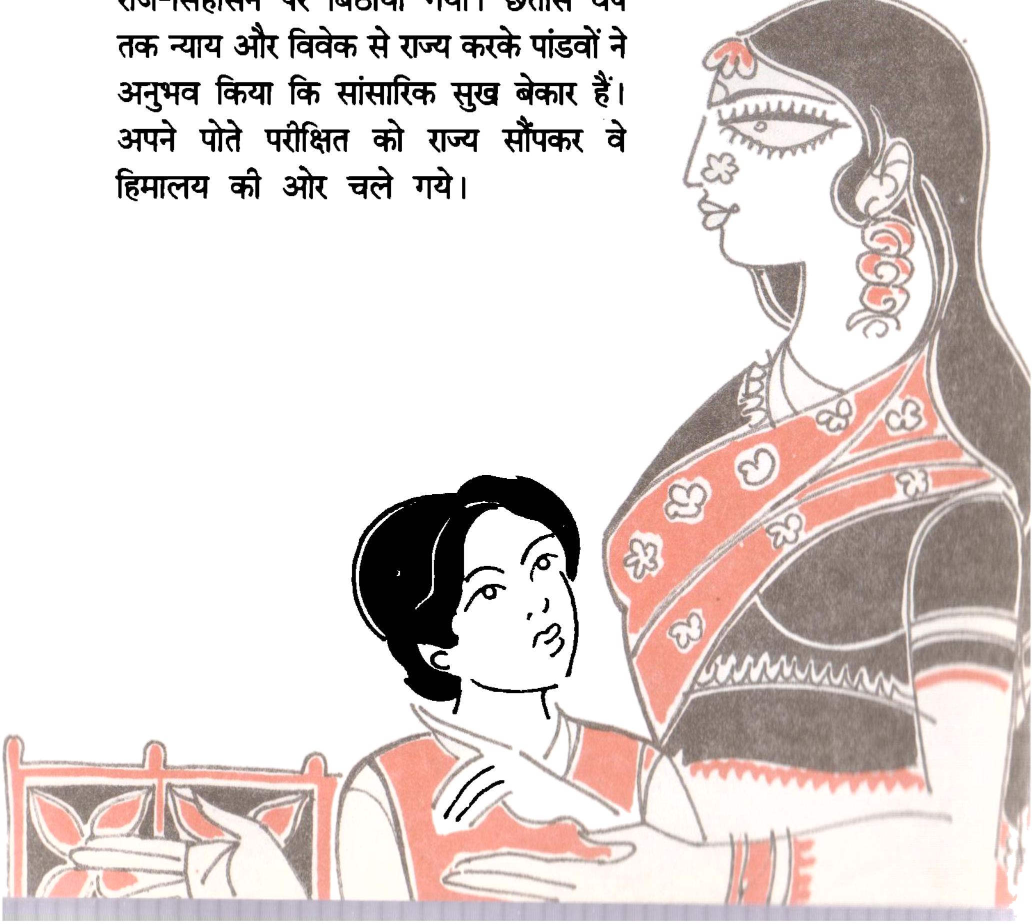
वनवास से लौटने पर दुर्योधन ने पांडवों को उनके भाग का राज्य देने से इंकार कर दिया। झगड़े को शांतिपूर्वक सुलझाया नहीं जा सका तो कुरुक्षेत्र के मैदान में उनके बीच बड़ा भयंकर युद्ध हुआ।



युद्ध की पूर्व संध्या को, सगे-संबंधियों का रक्त बहाने के विचार से व्याकुल अर्जुन ने युद्ध से मुंह मोड़ना चाहा। तभी श्रीकृष्ण ने उन्हें सत्य के लिए, स्वार्थ से ऊपर उठकर, युद्ध करने का उपदेश दिया। इस अवसर पर श्रीकृष्ण द्वारा कहे गये वचन भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध हैं। सैकड़ों वर्षों से गीता लोगों में आत्मविश्वास जगाती रही है, उन्हें धर्म का रास्ता बताती रही है और उनकी आत्मा को शक्ति प्रदान करती रही है।

जब तक युद्ध चलता रहा, श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथि और पथ-प्रदर्शक बने रहे।

युद्ध में कौरव हार गये। युधिष्ठिर को राज-सिंहासन पर बिठाया गया। छत्तीस वर्ष तक न्याय और विवेक से राज्य करके पांडवों ने अनुभव किया कि सांसारिक सुख बेकार हैं। अपने पोते परीक्षित को राज्य सौंपकर वे हिमालय की ओर चले गये।



अपनी इस विकट, अज्ञात यात्रा में युधिष्ठिर के सभी भाई थक-हार कर, एक के बाद एक गिरते गये। केवल युधिष्ठिर बचे और स्वर्गधाम तक जा पहुंचे। इसका अर्थ यह है कि आध्यात्मिक लक्ष्य तक पहुंचने में शरीर कोई बाधा नहीं है।



महाभारत में अनेक कथाएं हैं और उन सब का अपना महत्व है। संसार की किसी भी पुस्तक में जीवन के इतने पहलुओं के बारे में नहीं लिखा गया। इसमें दर्शन, राजनीति, इतिहास, मनोविज्ञान और भारत के अनोखे रंगारंग स्वरूप का वर्णन, सब कुछ है। इस प्रकार हम महाभारत को भारतीयता का सार कह सकते हैं या कम-से-कम भारत की झांकी तो कह ही सकते हैं।



वेदव्यास महाभारत के रचयिता थे। उन्होंने इस महाकाव्य को लिखने का निश्चय किया तो उन्हें किसी ऐसे लिखनेवाले की आवश्यकता हुई जो उनके मुंह से निकले पद्यों को लिखता जाय। उन्होंने गणेश से कहा। गणेश राजी तो हो गये लेकिन उन्होंने कहा कि वह इसी शर्त पर लिखेंगे कि कवि बोलते जायें, रुकें नहीं। जहां उनके मुंह से निकलनेवाला शब्दों का प्रवाह रुका, वह आगे लिखने से इंकार कर देंगे। वेदव्यास मान गये, लेकिन इस शर्त पर कि गणेश जो कुछ लिखें, पहले उसे अच्छी तरह समझ लें।

इस प्रकार महाभारत लिखा गया। उसमें अठारह सर्ग और नब्बे हजार श्लोक हैं।

"और तब वर्षा आयी। काले मेघों ने चंद्रमा को ऐसे ढंक लिया जैसे मनुष्य का दंभ उसकी आत्मा को ढंक देता है। यह वर्षा मानो कृपा-वृष्टि थी। सब ओर ताजगी, हरियाली और सुंदरता छा गयी।

"फिर शरद ऋतु आयी। आकाश और जल ऐसे साफ हो गये जैसे ध्यान की अवस्था में मन। रास्तों से कीचड़ इस तरह हट गया जैसे अज्ञानियों के भ्रांत विचार। सागर ऐसे शांत था जैसे आत्मा अपने को पहचान कर शांत हो जाती है। चंद्रमा सच्चे ज्ञान के समान चमक रहा था।"

यह अंश भागवत से लिया गया है जो सब पुराणों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। यहां कवि, प्रकृति और मनुष्य के मन की विभिन्न दशाओं में तुलना कर रहा है। यही शैली सारे ग्रंथ में मिलती है।

वृक्षों के झुरमुट से श्रीकृष्ण की बांसुरी का स्वर सुनायी पड़ता है। गऊएं, ग्वाले, गोपिकाएं और यहां तक कि यमुना नदी भी जैसे अपने को भूल जाती है। सभी विभोर होकर बंसी की तान सुनते हैं। यह सब केवल कवि की कल्पना नहीं। इसका गूढ़ अर्थ है। बंसी का स्वर ईश्वरीय पुकार है, जिसे सुनते ही सारी प्रकृति और सारे जीव उसकी ओर खिंचते ही चले जाते हैं।

भागवत में श्रीकृष्ण के जीवन की अनेक कथाएं कही गयी हैं। हर प्रसंग का एक गूढ़ अर्थ है।

भागवत कदाचित उन पुराणों में से है जो ईसा की पहली और छठी शताब्दी के बीच लिंखा गया होगा। कम से कम वह पुराण जिसे व्यास द्वारा रचित मौलिक पुराण माना जाता है, बहुत प्राचीन ही होना चाहिए।

महर्षि व्यास के मूल ग्रंथ से विचार और प्रेरणा लेकर उनके शिष्यों और फिर आगे उनके शिष्यों ने बारी-बारी से छत्तीस पुराणों की रचना की। इनमें जो महत्वपूर्ण हैं, वे महापुराण और शेष उप-पुराण कहलाते हैं। महापुराणों की श्रेणी में विष्णु भागवत, नारदीय, गरुड़, पद्म, वराह, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, वायु, लिंग, स्कंद, अग्नि, मत्स्य तथा कर्म पुराण आते हैं।

संस्कृत में पुराण उन प्राचीन प्रसंगों को कहते हैं जो पुराने होते हुए भी सदा नये लगते हैं। पुराणपि नवम्ः, अर्थात् पुराना होकर भी नया।

यद्यपि पुराणों में मुख्य रूप से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के कार्यों और गुणों की चर्चा की गयी है, पर अन्य कई विषयों का वर्णन भी इनमें मिलता है।

क्या यह बात कम रोचक है कि पश्चिमी जगत द्वारा इस समस्या पर विचार करने से बहुत पहले विष्णु पुराण में साफ कहा जा चुका था कि सौर मंडल का केंद्र पृथ्वी नहीं, बल्कि सूर्य है।

पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, तथा एक कालचक्र पूरा करके प्रलय की व्याख्या विस्तार से की गयी है—प्रलय, जिसके बाद फिर से नयी सृष्टि होती है।

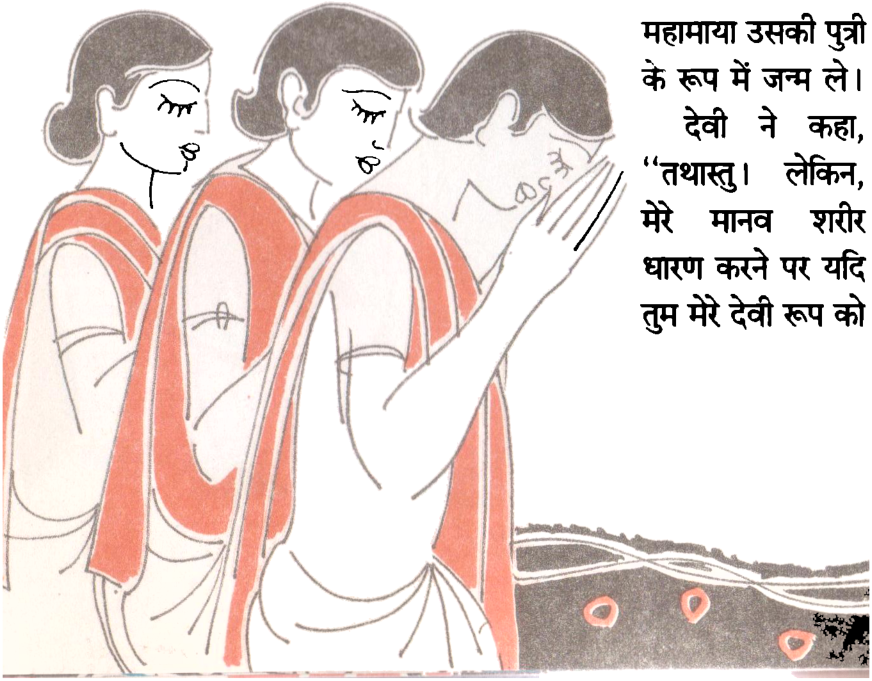


सारे पुराणों में ऐसे ऊंचे, दार्शनिक और वैज्ञानिक पहलुओं पर ही विचार नहीं किया गया है, उदाहरण के लिए गरुड़ पुराण में अनेक दवाओं के बारे में लिखा है और शरीर को निरोग रखने के उपाय भी बताये गये हैं।

महापुराणों और उप-पुराणों के अलावा पुराणों की एक तीसरी श्रेणी भी है जो स्थल पुराण कहलाती है। इनमें भारत के अनेक तीर्थ स्थानों के महात्म्य और गौरव का बखान किया गया है। सैंकड़ों वर्षों से ये लघुपुराण भारतीय परंपरा और प्राचीन इतिहास के भंडार रहे हैं और हिमालय से कन्याकुमारी तक फैले तीर्थ-स्थानों की यात्रा की प्रेरणा देते रहे हैं।

असल में पुराणों के रचयिता सारे भारत को मां के शरीर के समान पवित्र मानते थे। यह भाव कलिकापुराण के एक आख्यान में स्पष्ट है।

हिमालय की तराई में एक राज्य था। वहां दक्ष नामक एक राज कुमार था। वह देवी महामाया का उपासक था। देवी ने प्रसन्न होकर उससे वरदान मांगने को कहा। राजकुमार ने वर मांगा कि स्वयं महामाया उसकी पुत्री के रूप में जन्म ले।



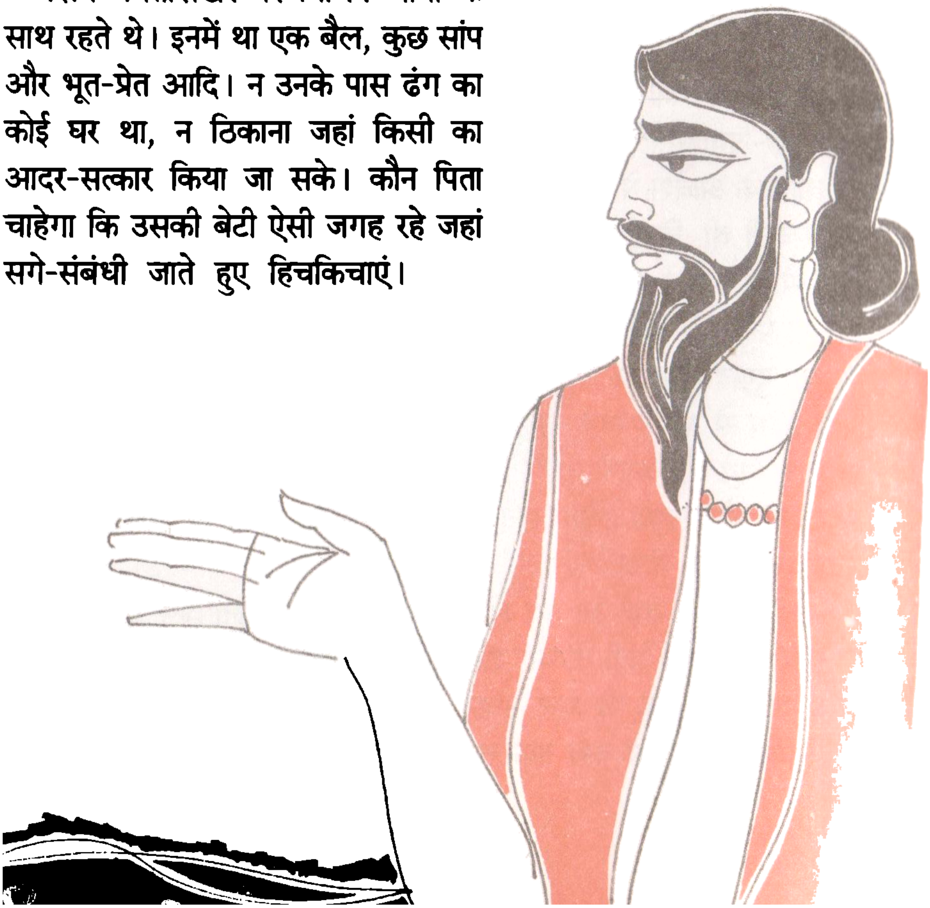
देवी ने कहा, "तथास्तु। लेकिन, मेरे मानव शरीर धारण करने पर यदि तुम मेरे देवी रूप को

भूल जाओगे या मेरे सम्मान में कोई कमी होगी तो मैं तुरंत शरीर त्याग दूंगी।''

कुछ समय बाद, दक्ष के राजा बनने पर, देवी ने मनुष्य रूप धारण कर उसकी पुत्री के रूप में जन्म लिया। अत्यंत सुंदर कन्या का नाम रखा गया सती।

दक्ष अपनी इस पुत्री को बहुत ज्यादा प्यार करते थे। लेकिन उसके बड़े होने पर वह भूल गये कि वह सिर्फ उनकी पुत्री नहीं, और कुछ भी है। देवताओं के हस्तक्षेप करने पर सती का विवाह जब भोलेनाथ शिव से हो गया तो दक्ष प्रसन्न नहीं थे।

शिव पर्वतशिखर पर विचित्र जीवों के साथ रहते थे। इनमें था एक बैल, कुछ सांप और भूत-प्रेत आदि। न उनके पास ढंग का कोई घर था, न ठिकाना जहां किसी का आदर-सत्कार किया जा सके। कौन पिता चाहेगा कि उसकी बेटी ऐसी जगह रहे जहां सगे-संबंधी जाते हुए हिचकिचाएं।



एक दिन दक्ष के महल में एक बड़े यज्ञ का आयोजन हुआ। शिव और सती को छोड़कर इसमें अन्य सभी संबंधियों को आमंत्रित किया गया। सती ने इस आयोजन का समाचार नारद से सुना और अपने पिता के यहां जाने का फैसला किया। "बिना बुलाये जाओगी?" शिव के पूछने पर सती ने कहा, "क्या पुत्री को अपने पिता के घर जाने के लिए निमंत्रण की प्रतीक्षा करनी होगी?"

संध्या के समय दक्ष का महल हजारों दीपों से जगमगा रहा था। लाखों फूलों से उसे सजाया गया था। विराट कक्ष में सैकड़ों अतिथि विराजमान थे। सहसा प्रसन्नता से खिली हुई सती पिता के सम्मुख आयी। दुर्भाग्य से दक्ष उसे देखकर खुश नहीं हुआ। वह सती को साधारण वस्त्रों में देखकर कट-सा गया। बात यह थी कि वह स्वयं और उसकी अन्य सभी पुत्रियां बहुमूल्य रेशमी वस्त्रों, आभूषणों और हीरे-जवाहरातों से दमक रही थीं।

क्रोध के आवेश में दक्ष शिव को बुरा-भला कहने लगे। सती अपना निरादर सह सकती थी, किंतु अपने पति के खिलाफ कुछ नहीं सुन सकती थी। उसने पिता से शांत होने को कहा, लेकिन दक्ष चुप नहीं हुए। इससे सती को ऐसा आघात पहुंचा कि वह मूर्छित होकर गिर गयी और वहीं उसकी मृत्यु हो गयी।

यह दुखद समाचार शिव के पास पहुंचा। शांत और समाधिस्थ रहने वाले शिव क्रोध से कांपने लगे। इस क्रोध के फलस्वरूप असंख्य अलौकिक जीव प्रकट हो गये जो विनाश और विध्वंस पर उतारू थे। उन्मत्त-से वे सब दक्ष के महल की ओर लपके और देखते ही देखते समारोह भवन को श्मशान भूमि में बदल कर रख दिया।

तभी शिव भी वहां आ गये और बिना कुछ कहे, अपनी प्रिय पत्नी के शव के पास बैठ गये। सती के मृत शरीर को अपने कंधे पर रख कर वे उठ खड़े हुए। शोक में डूबे वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलते गये।

लेकिन इस प्रकार कब तक चलने दिया जाता। आखिर भगवान विष्णु ने

अपने अदृश्य सुदर्शन चक्र से एक-एक करके सती के अंगों को काटना शुरू किया। जब सती के शरीर का कोई चिह्न शेष न बचा तो शिव पर्वत पर लौट आये और समाधि में लीन हो गये।

जहां-जहां सती के अंग गिरे वहां शक्ति की पूजा के स्थान बन गये। इन्हें शक्ति पीठ कहते हैं।

आश्चर्य की बात नहीं कि प्राचीन काल से भारत-भूमि और देवी मां दोनों ही भारतवासियों के मन में एक समान हैं।

तिरुक्कुरल

अपनी जिस परंपरा पर भारत गर्व करता है, उसमें भारत की सबसे प्राचीन भाषाओं में से एक, तमिल, का बहुत बड़ा योगदान रहा है। युगों तक संस्कृत और तमिल बहनों की तरह साथ-साथ रही हैं।

कोई दो हजार वर्ष पूर्व तमिलनाडु के एक संत ने अनेक लघु पदों की रचना की। इन पदों में बहुत ही शक्ति है और इनमें जीवन की ऐसी सच्चाई भरी हुई है कि भारतीय साहित्य में इनकी तुलना नहीं। यह कृति तिरुक्कुरल अथवा कुरल नाम से जानी ज़ाती है। तिरु का अर्थ है पवित्र और कुरल छोटी छंद रचना को कहते हैं। पूरी रचना में एक सौ तैंतीस अध्याय हैं और हर अध्याय में दस-दस दोहे जैसे छंद हैं।

इन पदों के रचयिता संत तिरुवल्लुवर के नाम से विख्यात हैं। प्राचीन काल के बहुत से महापुरुषों की तरह इन्होंने भी अपने जीवन का कोई वृत्तांत नहीं छोड़ा। यहां तक कि उनका असली नाम भी मालूम नहीं क्योंकि तिरुवल्लुवर का अर्थ तो है वल्लुवर जाति का भक्त। वल्लुवा जाति के लोग प्रायः राजा के ढिंढोरची हुआ करते थे जो हाथी पर सवार हो, ढोल पीट-पीटकर राजा के आदेशों और राज-नियमों आदि का ऐलान करते थे। ऐसा मालूम होता है कि तिरुवल्लुवर ने अपने लिए दूसरा व्यवसाय चुना। वे मइलापुर में, जो आज के मद्रास शहर का एक मोहल्ला है, जुलाहे का धंधा करते थे। वे सचमुच जुलाहे थे या नहीं, इस बारे में ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कभी बहुत पहले किसी ने उनको जुलाहा इसलिए कहा हो क्योंकि वे शब्दों से सुंदर पद बनाते थे जैसे जुलाहे धागों से सुंदर कपड़ा बुनते हैं।

उनके बारे में कई रोचक किस्से कहे जाते हैं। लोग उनके पास कोई न कोई

समस्या लेकर जाते थे। संत तिरुवल्लुवर उनका समाधान कोरे शब्दों से नहीं, बल्कि अपने आचरण से, उनके सामने दृष्टांत रखकर करते थे।

एक दिन सवेरे एक युवक अपनी समस्या लेकर उनके घर आया। उसने बड़े विनय से पूछा, "कृपया यह बताइए कि पत्नी का होना अच्छा है या न होना?"

संत यह प्रश्न सुनकर मुस्कुराये और नवयुवक से कुछ देर वहीं रुकने को कहा। कुछ देर बाद वे दोनों नाश्ते के लिए बैठे। संत तिरुवल्लुवर की पत्नी ने रात के ठंडे चावल उन दोनों के आगे परोसे।



उसी समय संत तिरुवल्लुवर ने ऊंचे स्वर में कहा, "वासुकी! ये चावल तो बहुत ही गर्म हैं।"

बिना कुछ कहे पत्नी वासुकी वहां बैठ गयी और पंखा झलकर चावलों को ठंडा करने लगी!

इसी प्रकार दोपहर को इसी अतिथि के साथ भोजन करते हुए संत तिरुवल्लुवर ने पुकार कर कहा, "क्या बात है वासुकी! इतनी रात हो गयी और तुमने दीया नहीं जलाया?"

इस बात फिर चुपचाप वासुकी ने दीपक जलाकर उनके पास रख दिया।

यह सब देखकर युवक हैरान रह गया। वह बोला, "महात्मन्! मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया। इसमें सन्देह नहीं कि पत्नी का होना उसके न होने से अच्छा है, अगर वह आपकी पत्नी की तरह आज्ञाकारिणी हो।"

इस कहानी से यह मालूम होता है कि उस समय लोगों के कैसे विचार थे। साथ ही यह भी जान पड़ता है कि तिरुवल्लुवर लोगों के प्रश्नों के उत्तर शब्दों से नहीं अपने आचरण से दिया करते थे। इस तरह लोगों को जल्दी बात समझ में आ जाती थी।

संत तिरुवल्लुवर ने अपने लिए राजा की नौकरी नहीं चुनी, लेकिन आनेवाली पीढ़ियों ने उसे बुद्धिमानों का सिरमौर माना। जीवन की हर परिस्थिति, जिसका मनुष्य सामना कर सकता है, के लिए कुरल में श्रेष्ठ किंतु व्यावहारिक और साथ ही, मन को प्रभावित करनेवाले उपदेश दिये गये है।

तिरुक्कुरल ने नीति संबंधी शिक्षा नहीं दी। उन्होंने कूटनीति, राजतंत्र, रोज के जीवन के आचार-व्यवहार आदि विषयों पर अपने विचार लिखे हैं। आज जो राज्य तमिलनाडु कहलाता है उसकी जनता में तिरुक्कुरल का बहुत ही सम्मान है।

कथा-सरितसागर

कहानी के अंदर कहानी, और फिर उसमें एक और कहानी। ऐसी सैकड़ों कहानियां—राजाओं और राक्षसों की, चतुर राजकुमारों और सुंदर राजकुमारियों की, कपटी धूर्तों और भोले-भाले लोगों की, बोलते पशुओं और चमत्कारी पहाड़ों की, जादुई दुर्गों और साहसिक घटनाओं की। यह है कथा-सरितसागर, विश्व में कथाओं का सबसे पुराना भंडार।

इन कहानियों को किसने लिखा और कब लिखा? इनमें से कुछ तो हजारों साल पुरानी जान पड़ती हैं। शायद उस समय इनका रूप कुछ और रहा होगा। हो सकता है कि इनमें से कुछ कहानियां कश्मीर की घाटियों में झेलम के ग्रामवासियों को किन्हीं तूफानी रातों में सुनायी गयी हों। कुछ कहानियां चली होंगी धुर दक्षिण से—शायद कन्याकुमारी से। किसी जलती दोपहर में कोई मछुआरा अपनी नाव की छाया में लड़कों से घिरा बैठा होगा और उसने ये कहानियां सुनायी होंगी। फिर ये कहानियां चली होंगी उत्तर की ओर। इस प्रकार सब दिशाओं से कहानियां आ-आकर मिल गयीं और कथा-सरितसागर बना।

उसी प्रकार, जिस प्रकार नदियां सभी ओर से बहती आती हैं और समुद्र में मिल जाती हैं। कथा-सरितसागर का अर्थ है कहानी की नदियों से बना सागर।

इन कहानियों का संकलन करनेवाले का नाम है सोमदेव। कोई हजार वर्ष पूर्व वह कश्मीर में रहता था। लेकिन जिस पुस्तक से उसने बहुत-सी कहानियां लीं, वह अब नहीं मिलती। हम इतना ही जानते हैं कि उसका नाम था 'वृहत्त कथा' यानी बड़ी कहानियां। वृहत्त कथा को गुणाढ्य ने पैशाची भाषा में लिखा। यह भाषा अब बहुत समय से एक भूली-बिसरी भाषा है। कहा जाता है कि उन पद्यकथाओं को रचकर गुणाढ्य ने अपने स्वामी सातवाहन को सुनाया। सातवाहन को उनमें कोई दिलचस्पी नहीं हुई। निराश होकर क्रुद्ध गुणाढ्य अपनी पांडुलिपि के पन्ने फाड़कर आग में झोंकने लगा। सातवाहन ने यह देखा तो उसे बहुत दुख हुआ। उसने गुणाढ्य को पूरी रचना जलाने से रोक लिया। लेकिन दुर्भाग्य से तब तक उसका तीन चौथाई भाग जलकर राख हो चुका था। सोमदेव द्वारा संस्कृत में इनका अनुवाद करने से पहले ही ये कहानियां भारत के समुद्री किनारों को पार कर दूर-दूर के देशों में जा पहुंची थीं। इनका बदला हुआ रूप अलिफ-लैला के किस्सों में साफ पहचाना जाता है।

साफ मालूम होता है कि कथा-सरितसागर की कहानियां किसी एक व्यक्ति की कल्पना की उपज नहीं हैं। उनके अज्ञात रचयिता देश-भर में रहे होंगे। शायद इन कहानियों को लिखनेवाले बहुत बड़े पंडित या विद्वान् नहीं थे, लेकिन मनुष्य के स्वभाव को खूब समझते थे। कथाकार ने पाखंडियों का निर्ममता से भंडाफोड़ किया है। जो निर्दोष हैं उनके दुख का वर्णन बड़ी सहानुभूति से करता है, और संसार के रंग-ढंग का वर्णन वैसा ही करता है जैसा सचमुच पाता है। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि जब पाखंडी को दंड मिलता है और नेकी व सच्चाई की जीत होती है तो कथाकार की वाक्चातुरी सचमुच निखर आती है। इस किस्म की एक कहानी यह है।

एक समय की बात है, एक मंदिर में एक कपटी आदमी साधु के वेश में रहता था। वह मौन व्रत का ढोंग किये रहता था। जैसा कि होता है, उसको सचमुच महात्मा समझकर बहुत-से भोले-भाले श्रद्धालु लोग तरह-तरह के कीमती उपहार, भोजन, कपड़े, रुपये आदि लेकर उसके पास आते थे। कपटी साधु के कई चेले थे जो उसी की तरह ढोंगी थे। साधु अच्छी-अच्छी चीजें तो खुद रख लेता और बची-खुची इन चेलों को बांट देता।

एक दिन एक धनी सौदागर अपनी पत्नी और अत्यंत सुंदर पुत्री के साथ उसके पास आया। ढोंगी साधु ने उस कन्या से विवाह करना चाहा। वैसे, बेशक वह सौदागर से कह सकता था कि वह उस लड़की से विवाह करना चाहता है। उन दिनों यह कोई अनोखी बात नहीं थी। धनवान लोग अपनी पुत्रियों को साधु-महात्माओं से ब्याह देते थे। लेकिन यह साधु कपटी था। उसने एक प्रपंच रचा। वह सौदागर को एक ओर ले गया और बोला, ''तुम जानते ही हो कि हमने मौन व्रत धारण कर रखा है, लेकिन तुम्हारे ऊपर इतना बड़ा संकट आनेवाला है कि तुम्हें आगाह करने के लिए हमें बोलना ही पड़ा। हमें तुम्हारी बेटी के बारे में कुछ कहना है। वह बड़ी अभागी है। यदि तुम उसे अपने पास रखोगे तो भाग्य तुम्हारा भी साथ छोड़ देगा।''

''मुझे क्या करना होगा?'' घबराकर सौदागर ने पूछा।

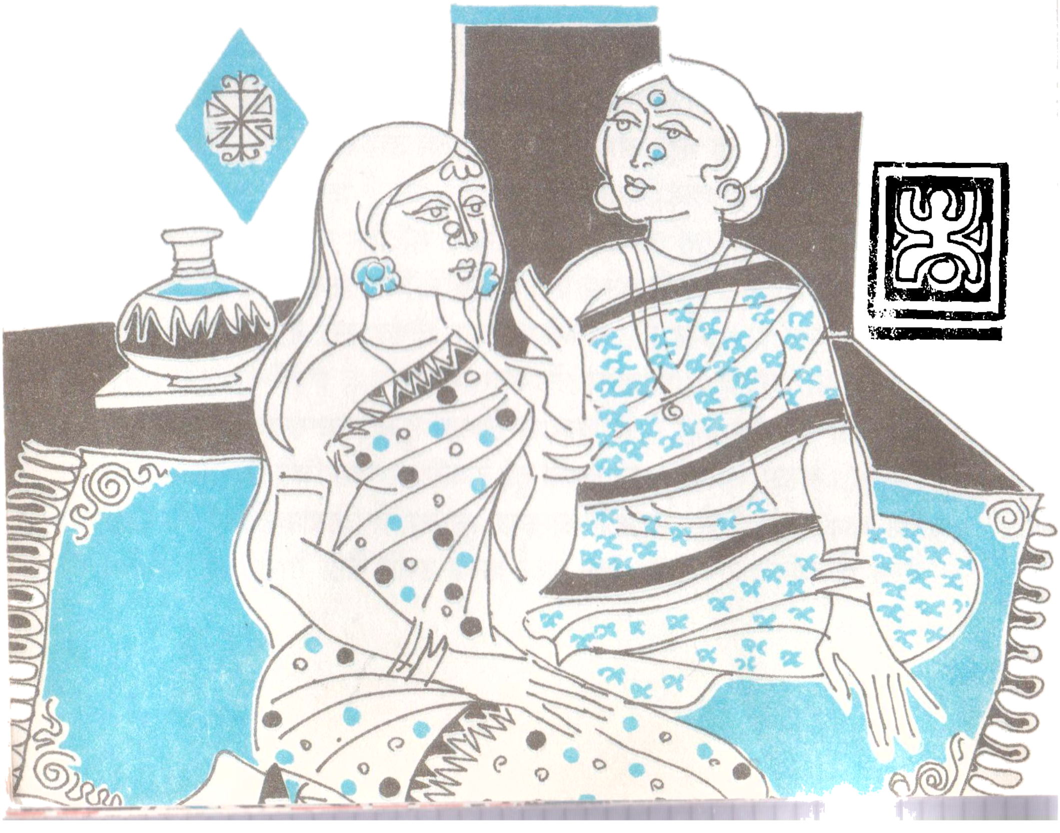
''बड़ा सरल उपाय है। उसे एक टोकरी में बिठा कर, आज ही रात नदी की धारा में बहा दो। और हां, टोकरी पर एक दीपक रख देना,'' साधु ने कहा।

''बहुत अच्छा,'' सौदागर ने उत्तर दिया।

रात्रि के पहले पहर में, शिकार से लौटता हुआ एक राजकुमार नदी पार कर रहा था। सहसा उसका ध्यान बहती हुई टोकरी पर गया जिस पर दीपक टिमटिमा रहा था। वह नदी से टोकरी निकालकर तट पर ले आया। टोकरी को खोलकर देखा तो चकित रह गया। एक सुंदर कन्या उसमें बैठी रो रही थी। संयोग की

बात है कि इस राजकुमार के पास एक भयंकर बंदर था जो उसने जंगल से पकड़ा था। राजकुमार ने उस बंदर को टोकरी में बंद करके नदी में छोड़ दिया और जलता हुआ दीपक उसी तरह टोकरी पर रख दिया।

नदी किनारे, मंदिर के पास साधु बड़ी उत्सुकता के साथ दीपकवाली टोकरी की प्रतीक्षा कर रहा था। जैसे ही वह उसे दिखायी दी, उसने अपने चेलों को आज्ञा दी कि नदी में तैरकर वह टोकरी उसके पास ले आयें। टोकरी उठाकर उसके कमरे में रख दी गयी। सब चेलों को वहां से विदा करके साधु ने टोकरी का मुंह खोला।



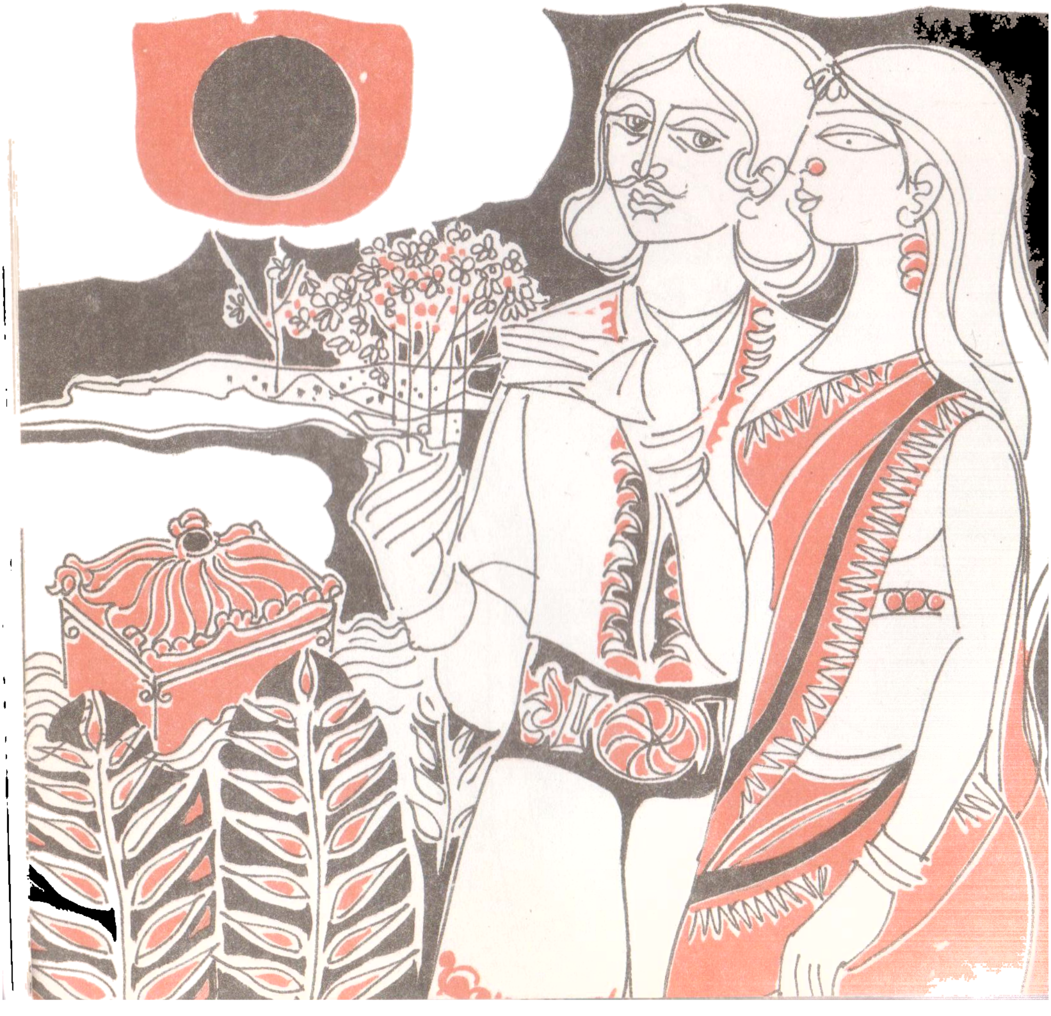
इससे पहले कि पता चले कि हुआ क्या, पहले उसकी नाक गायब हो गयी और फिर कान!

पागलों की तरह चिल्लाता हुआ वह नकली साधु सिर पर पांव रखकर भागा तो फिर कभी दिखायी नहीं दिया। वह तो एकदम चकरा गया होगा कि इतनी



सुंदर कन्या अचानक एक जंगली बंदर कैसे बन गयी।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उचित समय पर राजकुमार का विवाह उस कन्या से हो गया और वे दोनों हंसी-खुशी जीवन बिताने लगे।



बहुत दिनों की बात है, एक राजा के तीन बेटे थे। इन तीनों राजकुमारों का लिखने-पढ़ने में बिल्कुल मन नहीं लगता था। वे अपना सारा समय यों ही बेकार गंवा देते थे। इस बात का राजा को बहुत दुख था। वह सोचा करता कि अगर तीनों इसी तरह समय बरबाद करते रहे तो उनमें से कोई भी उसकी गद्दी संभालने योग्य नहीं होगा।

राजा ने उनके लिए एक के बाद एक कई शिक्षक रखे, पर कोई लाभ नहीं हुआ। गुरु की सूरत देखते ही राजकुमार मारे डर के भाग खड़े होते।

इसी प्रकार समय बीतता गया और राजा की चिंता बढ़ती गयी। आखिर राजा ने देश के सभी विद्वानों की सभा बुलायी और अपनी समस्या के बारे में उन्हें बताया।

"क्या आप में से कोई मेरी सहायता कर सकता है?" राजा ने पूछा।

काफी देर तक किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अंत में एक विद्वान खड़ा हुआ और बोला, "राजन! आप चाहें तो राजकुमारों की शिक्षा का भार मुझे सौंप सकते हैं। मैं उन्हें पढ़ाने की पूरी कोशिश करूंगा।"

उस विद्वान का नाम विष्णु शर्मा था। वह अपनी बुद्धि और चतुराई के लिए राज्य भर में प्रसिद्ध था। राजा को बहुत खुशी हुई कि इतने बड़े पंडित ने उसके बेटों को पढ़ाने का बीड़ा उठाया है।

राजा का महल बहुत बड़ा था। इसके चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पेड़ थे जिनकी

छाया महल की लंबी-चौड़ी छत के कई भागों पर पड़ती थी। विष्णु शर्मा राजकुमारों को, एकांत में, छत के एक कोने में ले जाकर बैठ गये।

पहले तो राजकुमार प्रसन्न नहीं हुए क्योंकि उन्हें पढ़ने के नाम से चिढ़ थी। लेकिन थोड़ी ही देर में उनका वहां से उठने का मन ही नहीं हुआ। विष्णु शर्मा का पढ़ाने का ढंग अनोखा था। उसने बात इस तरह शुरू की, "गोदावरी नदी के तट पर एक बहुत बड़ा पेड़ था। सांझ ढले सभी दिशाओं से पक्षी आ-आकर उस पेड़ पर बसेरा लेते थे...।" और इस प्रकार विष्णु शर्मा कहानियां कहते चले गये—पक्षियों की कहानियां, पशुओं की कहानियां, जो वास्तव में हमें अपने ही बारे में बताती हैं। सच्चा मित्र कौन है? मित्रता कैसे बनी रह सकती है? लोभ पर किस प्रकार काबू पाया जा सकता है?

ये कहानियां सिद्ध करती हैं कि निस्वार्थ होने के साथ-साथ मनुष्य सावधान और होशियार रहे तो उसका अच्छा फल अवश्य मिलता है।



विष्णु शर्मा के साथ बैठ-बैठ कर लड़के सीख गये कि बुद्धिमत्ता किस में है और खोटे-खरे की पहचान कैसे की जानी चाहिए।

पंचतंत्र की कहानियां एक बार नहीं, असंख्य बार कही जा चुकी हैं। इनकी बहुत-सी कहानियां आपने पढ़ी भी होंगी। पंचतंत्र की कुछ कहानियां चाहे बहुत प्रसिद्ध नहीं, पर हैं सच्चे मोतियों जैसी। 'बोलती गुफा' कहानी इसका एक रोचक उदाहरण है जो यह भी सिखाती है कि मनुष्य को अपने बचाव के लिए सदा तैयार रहना चाहिए।

एक बार एक गीदड़ एक वन में रहता था। अपने रहने के लिए उसने एक गुफा चुन रखी थी। एक दिन जब वह कहीं बाहर गया हुआ था तो एक भूखा



और थका-हारा सिंह गुफा के पास आया। गुफा में घुसकर उसने इधर-उधर सूंघा। सिंह ने सोचा, 'हो न हो, यहां कोई गीदड़ रहता है। अब भोजन के लिए मुझे मारे-मारे फिरने की जरूरत नहीं। मैं यहीं लेटकर आराम करता हूं। जब गीदड़ लौटेगा तो मेरी अच्छी दावत हो जायेगी।''

गोधूलि वेला में गीदड़ घर लौटा। गुफा में घुसते समय उसकी नजर सिंह के पैरों के धुंधले-से निशानों पर गयी। उसका कलेजा धक-धक करने लगा, पर शीघ्र ही अपने को संभालकर वह चिल्लाकर बोला, ''ए बोलती गुफा! आज तुझे क्या हो गया है? पहले तो जब मैं आता था तू मेरा स्वागत 'आइए श्रीमान सियारजी' कहकर करती थी, आज तू चुप है। क्या तू यह नहीं चाहती कि आज मैं अंदर आऊं?''

सिंह ने यह सुना तो मन में सोचने लगा, ''हो न हो, यह गुफा आज मेरे कारण ही डरी हुई है। इसीलिए गीदड़ का स्वागत नहीं कर रही। कहीं वह ताड़ न जाय।''

सिंह ने यह सोचकर गरजते हुए कहा, ''आइए श्रीमान सियार जी, स्वागत है।

बस फिर क्या था। जान बचाने के लिए गीदड़ सिर पर पांव रखकर भागा। भागते हुए उसने कहा, ''प्यारी गुफा! मैंने तुझे सदा के लिए छोड़ दिया है।''

लेकिन मन ही मन गीदड़ हंस रहा था, ''वाह, क्या कहने बोलती गुफा के! कभी गुफा भी बोलती है? ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद। जान बची और लाखों पाये।''

ऐसी ही रोचक, गागर में सागर भर देनेवाली कहानियों का खजाना है पंचतंत्र।

जातक

आज भी बौद्ध धर्म को माननेवाले संसार में बहुत हैं। भारत में बौद्धों की संख्या चाहे अधिक नहीं, किंतु प्रत्येक भारतवासी महात्मा बुद्ध के बारे में कुछ न कुछ जानता है। जन्म से वह एक राजकुमार थे, नाम था सिद्धार्थ। घर-परिवार, धन-दौलत और राजसी ठाट-बाट को त्याग, वह वनों को चले गये ताकि दुख और कष्ट पर विजय पाने का उपाय ढूंढ़ सकें।

कहा जाता है कि सिद्धार्थ के रूप में जन्म लेने से पहले बुद्ध ने अनेक जन्म धारण किये, कभी मनुष्य के रूप में और कभी पशुओं के रूप में। अपने इन सभी जन्मों में उन्होंने कुछ दुर्लभ अनुभव प्राप्त किये जो बाद में बोध प्राप्त कर बुद्ध बन जाने पर उन्होंने अपने शिष्यों को सुनाये।

इन कथाओं को जातक कथाएं कहा जाता है। यह कहना कठिन है कि इनमें कितनी कहानियां सचमुच स्वयं बुद्ध द्वारा सुनायी गयीं थीं और कितनी उनके उत्साही शिष्यों द्वारा बाद में जोड़ी गयीं।

कुल मिलाकर 457 जातक हैं। मोटे तौर पर जातक शब्द का अर्थ है जन्म। हर जातक में एक अथवा एक से अधिक कहानियां हैं।

प्रत्येक कथा में कोई न कोई शिक्षा भी होती है। ये कहानियां हमें जीवन को भली प्रकार समझने और अच्छा जीवन बिताने की प्रेरणा देती हैं। वे यह भी बताती हैं कि घमंड, लालच और बुराई से दूर रहना चाहिए क्योंकि दुनिया में जितने दुख हैं उनके मूल कारण यही हैं।

अब क्या था! युवक ने गांव लौटते ही मंत्र का उपयोग दिन में कई-कई बार करना शुरू कर दिया। प्रतिदिन वह ढेरों आम लाता और मंडी में बेच देता। कुछ ही महीनों में वह मालामाल हो गया।

इस जादू-मंत्र का समाचार राजा के कानों तक भी पहुंचा। उसने युवक को बुलवाया और पूछा कि वह मंत्र उसने कहां से सीखा?

यह सोचकर कि यदि मैं कहता हूं कि मैंने वह मंत्र अपने से छोटी जातिवाले एक देहाती से सीखा है तो मेरी हंसी होगी, वह घमंडी युवक बोला, "महाराज! मैंने यह मंत्र दूर, बहुत दूर एक विश्वविद्यालय में बड़े-बड़े पंडितों की सेवा करके, बड़ी साधना के बाद प्राप्त किया है।"

"बहुत खूब! यह जादू अब तुम हमारे सामने दिखाओ," राजा ने आज्ञा दी।

फिर राजा, उसके परिवार के लोगों, मंत्रियों और अधिकारियों की एक लंबी कतार, युवक के पीछे-पीछे शाही बाग में पहुंची। युवक ने एक बड़ा-सा आम का पेड़ चुना, और उसके सामने जाकर मंत्र पढ़ने लगा। लेकिन यह क्या? मंत्र का कोई असर नहीं हुआ। उसने झूठ जो बोला था।

लज्जा से युवक पर घड़ों पानी पड़ गया। राजा के सामने उसे सच्ची बात कहनी पड़ी। राजा ने सब सुनकर कहा, "घमंड में आकर तुम अपने गुरु को भूल गये हो, जाओ उनसे क्षमा मांगो। अगर वे क्षमा कर दें तो हो सकता है मंत्र का फल मिले।"

युवक ने ऐसा ही किया। पर मंत्र ने दुबारा फल नहीं दिया, क्योंकि इसका प्रयोग उसने लोभ के वश में आकर किया था। वह गुरु को दिया वचन भूल गया था।

जातक कथाएं इसी प्रकार की नैतिक शिक्षाओं से भरी पड़ी हैं।

अर्थशास्त्र

एक बार एक ऊंचे कुल का नवयुवक, जिसे राजा ने बुरी तरह अपमानित किया था, किसी सुनसान सड़क पर सोचता चला जा रहा था। वह सोच रहा था कि अपमान का बदला ले तो कैसे? तभी उसने एक अनोखा दृश्य देखा। गुस्से से भरा एक बूढ़ा कुछ कंटीली झाड़ियों पर कोई रस डाल रहा था।

"यह आप क्या कर रहे हैं?" नवयुवक ने बूढ़े से पूछा। "इस झाड़ी के कांटे ने मेरा पांव छलनी किया है। मैं इन सबको जड़ से नष्ट कर दूंगा। यह मीठा रस है जो मैं उंढ़ेल रहा हूं। इस पर लाखों चींटियां आ जायेंगी और देखते ही देखते इनकी जड़ें काट डालेंगी?" बूढ़े ने उत्तर दिया।

बूढ़े की बुद्धिमत्ता और दृढ़ संकल्प से नवयुवक चकित रह गया। उसे लगा कि बदला लेने के लिए वह व्यक्ति उसे सबसे अच्छी सलाह दे सकेगा।

इस नवयुवक का नाम चंद्रगुप्त था और उस बूढ़े का चाणक्य। चंद्रगुप्त ने चाणक्य से उसका सलाहकार बनने की प्रार्थना की। चाणक्य मान गये, क्योंकि उन्हें भी राजा से शिकायत थी।

चाणक्य का मार्गदर्शन पाकर चंद्रगुप्त शीघ्र ही मगध-नरेश नंद को सिंहासन

से उतार कर, स्वयं राजा बनने में सफल हो गया। इसी चंद्रगुप्त ने मौर्य वंश की स्थापना की।

चाणक्य और चंद्रगुप्त के बीच इस प्रथम भेंट की कहानी भले ही सच न हो, पर इसकी लोकप्रियता से यह तो पता चलता ही है कि लोग चाणक्य के बारे में क्या सोचते थे। उनकी दृष्टि में वे घमंडी, लेकिन बेहद चतुर थे और अपना लक्ष्य सिद्ध करना जानते थे।

चाणक्य, कौटिल्य के नाम से भी जाने जाते हैं। कई लोगों का विचार है कि इस शब्द का अर्थ है राजनयिक, किंतु मूल शब्द शायद कौटिल्य नहीं, कौटल्य है। कौटल्य एक प्राचीन महर्षि का नाम है और चाणक्य शायद उसी के वंशज थे।

चाणक्य के बारे में यह धारणा उनकी पुस्तक के आधार पर बनायी गयी है। यह पुस्तक है अर्थशास्त्र जो उन सब ग्रंथों से निराली है जिनकी चर्चा अब तक हमने की है। ग्रंथ से पता चलता है कि भारत का पांडित्य आध्यात्मिक, दार्शनिक व कथा-कहानियों आदि तक ही सीमित नहीं था। जीवन के सभी पहलुओं पर पुस्तकें लिखी जाती थीं। यह प्राचीन ग्रंथ राजनीति, कानून, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र की पुस्तक है।

चाणक्य ने इन विषयों पर अपने से पहले के लेखकों तथा विद्वानों द्वारा माने गये सभी सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया था। वे जानते थे कि राजकुमार तथा राज्य के अधिकारी लोग उन सब पुस्तकों को पढ़ने और उनसे लाभ उठाने का कष्ट नहीं करेंगे। यही कारण है कि अपनी इस पुस्तक में टिप्पणी सहित उन सभी विद्वानों की बातों का सार प्रस्तुत किया है।

कुछ आलोचक चाणक्य को क्रूर और दुष्ट बताते हैं, क्योंकि शत्रु को ठिकाने लगाने के लिए, आवश्यकता पड़ने पर वह छल-कपट से काम लेने को भी कहते हैं। चाणक्य ने अपनी यह पुस्तक राजकुमारों, राजनयिकों तथा प्रशासकों

के लिए लिखी थी। अपने लक्ष्य को पाने के लिए छल-कपट का व्यवहार उन दिनों राजाओं में साधारण-सी बात थी। चाणक्य ने केवल यही दर्शाया है कि छल का सहारा कब लेना चाहिए और कब नहीं।

चाणक्य ने राज-काज चलाने के ऐसे कितने ही पुराने सिद्धांतों का खंडन कर दिया जो विवेकपूर्ण नहीं थे। उदाहरण के लिए, उन दिनों राजगद्दी पाने के लिए एक राजपुत्र अपने पिता की हत्या भी कर डालता था। इसको रोकने के लिए राजाओं के सलाहकार कई प्रकार के सुझाव देते थे। कुछ का विचार था कि राजकुमारों को राजधानी से दूर दुर्ग में बंदी बनाकर रखना चाहिए या उन्हें सदा मृत्यु का भय दिखाकर, दबाकर रखना चाहिए।



चाणक्य ने इनको गलत कहा है। उन्होंने कहा कि राजकुमार अच्छे शिक्षकों की देखरेख में पलें, यह सबसे अच्छा हल है। अच्छी शिक्षा ही राजकुमारों को सही रास्ता दिखायेगी और गलत कामों से बचायेगी। चाणक्य का यही विश्वास था। इस प्रकार अर्थशास्त्र व्यावहारिक सलाह और अच्छे सामान्य ज्ञान की पुस्तक है।





~~रु. 10.00~~
रु. 12.00
ISBN 81-237-0027-X
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया